संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

मूल्य : रु. ६/-
अंक : १८६
जून २००८

गुरुपूर्णिमा विशेष

ब्रह्मलीन सद्गुरु स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज

परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू

महर्षि वेदव्यासजी

भगवान शिव कहते हैं :

आकल्पजन्मकोटीनां यज्ञव्रततपः क्रियाः ।
ताः सर्वाः सफला देवि गुरुसंतोषमात्रतः ॥

'हे पार्वती ! कल्पपर्यन्त के, करोड़ों जन्मों के यज्ञ, व्रत, तप और शास्त्रोक्त क्रियाएँ– ये सब गुरुदेव के संतोषमात्र से सफल हो जाते हैं ।'
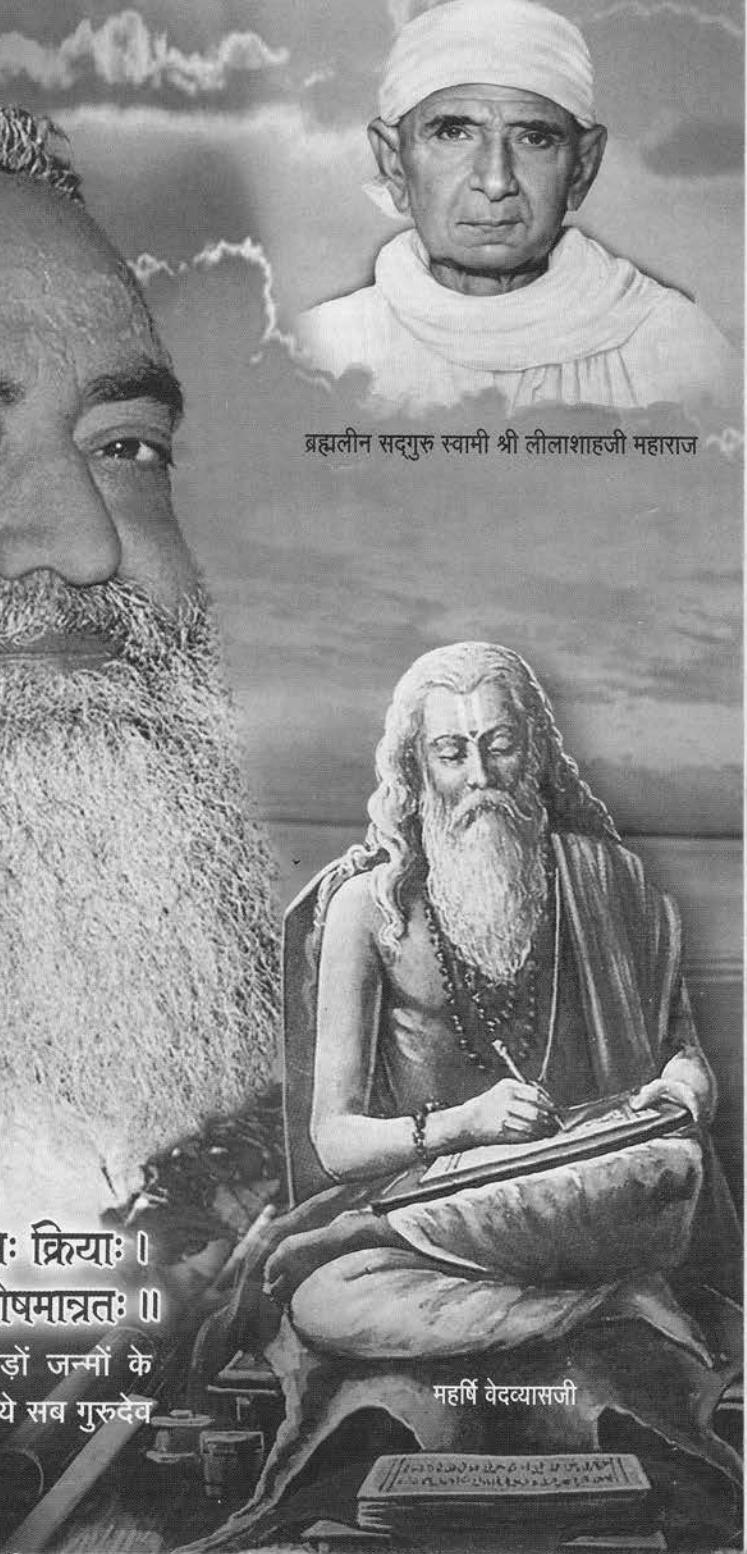
ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

वर्ष : १८ अंक : १८६
जून २००८ मूल्य : रु. ६-००
ज्येष्ठ-आषाढ़ वि.सं.२०६५

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत, नेपाल और भूटान में

(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २२५/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

पाकिस्तान एवं बांग्लादेश में

(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	द्विवार्षिक	पंचवार्षिक
भारत, नेपाल व भूटान में	७०	१३५	३२५
पाकिस्तान, बांग्लादेश में	९०	१७५	४००
अन्य देशों में	US$20	US$40	US$80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

संपर्क पता : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
ऋषि प्रसाद से संबंधित कार्य के लिए फोन नं. : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.
अन्य जानकारी हेतु : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, मोटेरा, जिला गांधीनगर, पीओ. साबरमती-३८०००५. गुजरात
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, ''सुदर्शन'', मिठाखली अंडरब्रीज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद - ३८०००९. गुजरात
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा, श्रीनिवास

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

❀❀❀ अनुक्रमणिका ❀❀❀

शांति का मार्ग

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

'जो पुरुष संपूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही परम पद, परमात्मशांति को प्राप्त होता है ।' **(गीता : २.७१)**

कामना को छोड़ दो । ऐसा सुख तो स्वर्ग में भी नहीं होता जैसा सुख कामना को त्यागने से होता है । इतना दुःख तो नरक में भी नहीं होता जितना कामनावान के हृदय में होता है ।

विषय-भोग की कामना न करो । प्रारब्धवेग से शरीर का पोषण होता ही जा रहा है । मिले हुए पदार्थ में ममता न करो क्योंकि सब बहनेवाला है । इनको बहते जानकर तुम तृप्त रहो । इन सब बहावों को देखनेवाला जो साक्षी परमात्मा है वह रहनेवाला है । उसके रहने की गरिमा को जानकर उसीकी ओर आ जाओ । तुम बहने का भी मजा लो और रहने का भी मजा लो । बहाव में बहो नहीं और रहनेवाले को पीठ मत दो ।

टूटे फूटे भाग्य को संत देत हैं जोड़ ।
संत बिचारे क्या करें हम ही लेत हैं मुख मोड़ ॥

हम अपनी ओर से अपने मुख को न मोड़ें; हमारा कितना भी टूटा-फूटा भाग्य हो, जुड़ जायेगा । सदियों का अँधेरा जाने में देर नहीं लगती, ऐसे ही सदियों की भटकान मिट जायेगी ।

इस इच्छा, वासना और ममता के कारण हम युगों से कई गर्भों में भटकते आये हैं । हे कामना ! तू किनारे हट । जब भी चित्त में कामना उठती हो, उसको बोलो : 'अभी तेरा समय नहीं है । तूने हमें कई युगों से भटकाया है। हे स्पृहा ! तुझे नमस्कार है । तूने हमें कई युगों से भटकाया है । हे ममता ! तूने कई जन्मों तक हमें मारा है । हे अहंकार ! तुझे अलविदा है । कई युगों से तू हमें अकेला पछाड़ता आया है । अब तो हम भगवान कृष्ण के वचनों को अपने वचन बना लेंगे । श्रीकृष्ण के वचनों से एकाकार होकर, श्रीकृष्ण के वचन मानकर हे मोह-ममता-कामना ! तेरा हम त्याग करते हैं । हम श्रीकृष्ण के अनुभव को मान लेंगे, श्रीकृष्ण के ज्ञान को अपना ज्ञान बना लेंगे, श्रीकृष्ण के उपदेश को अपने जीवन में अपनायेंगे ।'

ममतारहित निर्द्वन्द्व हो,
भ्रम-भेद सारे दे हटा ।
मत राग कर मत द्वेष कर,
सब दोष मन के दे मिटा ॥
निर्मूल कर दे वासना,
निज आत्म का कल्याण कर ॥
भांडा दुई का फोड़ दे,
सर्वात्म अनुसंधान कर ॥

दुई के चिंतन से ही राग-द्वेष, भय, शोक, चिंता, ग्लानि, स्पृहा, ममता, अहंकार सब दोष पैदा होते हैं ।

हे मेरे मन ! तू सर्वात्म-अनुसंधान कर, द्वैत भावनाओं को अलविदा कर, ममता और स्पृहा को अलविदा कर ।

इच्छा किसे कहा जाता है ? मुझे कुछ मिले, मैं कुछ करके, कुछ पकड़ के सुखी होऊँ, कुछ देखकर सुखी होऊँ... यह इच्छा है । इन इच्छाओं

से हम युगों से भटकते आये, हमें लवलेश (अत्यंत थोड़ी मात्रा में) भी सुख मिला नहीं, टिका नहीं। यदि वह सुख हमको मिलता, टिकता तो अभी गोदाम भर जाते।

सुई की नोक पर जितना पानी टिक जाय उतना भी यदि सुख टिकता तो अभी हमारे पास सुख का गोदाम होता लेकिन वे सुख टिके नहीं। आज तक हम वही-के-वही खाली रहे। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।

पुमान् का मतलब है वह पुरुष जिसकी इन्द्रियों में भोग भोगने की शक्ति हो लेकिन जो पुरुषार्थ करके भोग-विलास को छोड़कर आत्मा की तरफ आता है, संपूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित होता है; शत्रु से बदला लेने की जिसमें ताकत हो लेकिन क्षमा कर देता है, वह पुमान् है।

कामना छोड़ो लेकिन कामना के बाद स्पृहा को भी छोड़ो। स्पृहा छोड़ दी, कामना छोड़ दी लेकिन फिर ममता बच जाती है। वह ममता भी तुम्हें दुःख देती है। ममता को छोड़ो। अब 'मैंने ममता छोड़ दी, मैंने कामना छोड़ दी, मैंने स्पृहा छोड़ दी।'- ऐसा उन्हें छोड़ने का अहंकार रह जाता है। उस अहंकार को भी छोड़ दो।

अहंकार दो प्रकार का होता है - एक प्राकृतिक अहंकार और दूसरा अविद्या-अंतर्गत या अप्राकृतिक अहंकार।

प्राकृतिक अहंकार देह में ही रहता है। प्राकृतिक अहंकार शरीर की सँभाल रखवाता है, देह में 'मैं-मैं' कराता है। 'मैं मनुष्य हूँ, मुझे इस प्रकार का भोजन करना चाहिए' - शरीर को भूख लगी तो अन्न-जल तक पहुँचाता है। थकान आयी तो बिस्तर पर ले जाता है। उबान आयी तो मनोरंजन की तरफ ले जाता है। प्राकृतिक अहंकार इतना दुःखदायी नहीं होता।

अविद्यमान पदार्थों में अहं करना - 'यह मेरा मकान है, मेरा इतना धन है, मेरी इतनी भूमि है, मेरे इतने मित्र हैं'- यह है अविद्या-अंतर्गत या अप्राकृतिक अहंकार। भोग भोगने की कामना तो छोड़ो लेकिन त्याग करने का अहं भी छोड़ो और अप्राकृतिक अहंकार को भी छोड़ो।

जैसे गरुड़ भगवान की सेवा में थे। भगवान नागपाश में बँध गये। गरुड़ ने नागों को स्वाहा किया। उनके मन में अहंकार आ गया कि 'मैं न होता तो ठाकुरजी का क्या हाल होता ?' फिर अशांत हो गये। खूब उपाय करने पर भी अशांति नहीं मिटी।

बिनु रघुबीर पद जिय की जरनी न जाई।

परमात्मा की कृपा के बिना जीव की अशांति नहीं मिटती।

गरुड़ शिवजी के पास गये। शिवजी ने जान लिया कि सेवक अपने स्वामी में दोष देखता है। शिवजी ने उन्हें काकभुशुंडिजी के पास भेजा। वहाँ तत्त्वज्ञान का सत्संग सुना तब अपने स्वामी के प्रति जो दोषदर्शन था वह मिटा। श्रीरामजी के प्रति सद्भाव और श्रद्धा जगी, अशांति और उद्वेग मिटा। भगवान के दर्शन से, सान्निध्य से अश्रद्धा और अशांति हो गयी थी लेकिन भगवान की कथा से अशांति और अश्रद्धा मिटी। गरुड़जी जितात्मा, कृतात्मा और शांतात्मा हो गये। सत्संग की बलिहारी है ! भगवद्दर्शन से भी भगवद्कथा महत्त्वपूर्ण साबित हुई है।

जय-विजय भगवान विष्णु के पार्षद थे। अहंकार था कि हम भगवान के पार्षद हैं। एक बार सनकादि ऋषि वैकुंठ गये। उन्हें अंदर प्रवेश नहीं दिया, उनका अपमान कर दिया। जय-विजय शापित हुए और उन्हें तीन जन्म लेने पड़े।

जन्म का हेतु वासना, स्पृहा, ममता और अहंकार है। इन चारों को यदि छोड़ दिया तो फिर जीते-जी वह आदमी मुक्त हो जाता है। ❑

कभी न छूटे पिंड दुःखों से...

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

नाविरतो दुश्चरितान्नाशांतो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

'जो बुरे आचरणों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसके मन, इंद्रियाँ संयमित नहीं हैं, जो अशांत है और जिसका मन चंचल है वह मनुष्य सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा (आत्मविचार करते रहने पर) भी इस परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता ।'

(कठोपनिषद् : १.२.२४)

जब तक आत्मज्ञान नहीं हुआ, जब तक परमात्मशांति नहीं मिली, तब तक हजार-हजार योनियों में, लाख-लाख योनियों में भटकता हुआ यह जीव दुःखों से नहीं छूटता ।

कभी न छूटे पिंड दुःखों से
जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं ।

ब्रह्मज्ञान तो हो जाता है लेकिन ब्रह्मज्ञान ही पर्याप्त नहीं है । हमारी बुद्धि उस ब्रह्म-परमात्मा की अनुभूति करते-करते परमात्मा में ठहर जाय । बुद्धि में परमात्मा का ज्ञान होना कोई बड़ी बात नहीं लेकिन बुद्धि का परमात्मा में स्थिर हो जाना यह बड़ी बात है । ज्ञान तो जल्दी हो जाता है लेकिन टिकता नहीं है क्योंकि इंद्रिय-लोलुपता, संसार की सत्यता, चित्त की चंचलता ज्ञान को टिकने नहीं देती ।

जब हम दुश्चरित्रों से दूर होते हैं तो हम सच्चरित्र होते हैं । सच्चरित्र से पुण्य होते हैं और पुण्य से हमको सत्संग, संत के दर्शन और परमात्मा में रुचि होती है । जब सत्संग में रुचि नहीं होती है तो समझ लेना चाहिए कि चित्त में कुछ दुश्चरित्रता है, चित्त में मल है, पाप है । भोग की वासना, अहंकार की वासना, पापकर्म की वासना, मैं और मेरे-तेरे की अहंता-ममता यह सब अपार मल चित्त में पड़ा है ।

शुभ कर्म में आलसी, बिषय कर्म में प्रीत ।
अशुभ कर्म छोड़े नहीं, यह पामर की रीत ॥

नाविरतो दुश्चरितात्... जो पापकर्म से निवृत्त नहीं हुआ, जो दुष्कृत से दूर नहीं हुआ, जिसका चित्त समाहित नहीं हुआ ऐसे व्यक्ति को परमात्मसुख नहीं मिलता । दरिया में डूबकर खारा पानी पीता हुआ व्यक्ति क्या समझे कि दरिया के किनारे खड़े-खड़े दरिया की लहरें देखने में क्या सुख मिलता है ! जो दरिया के किनारे खड़े हैं उनसे पूछो कि किनारे पर खड़े होकर देखने से कितना मजा आता है ! दरिया के किनारे खड़े होने से जो मजा आता है वह डूबने से नहीं आता है । ऐसे ही भोगों में डूबनेवाले व्यक्ति को क्या पता कि भोगों से पृथक् होकर, साक्षी होकर, भोग-विकारों से परे होकर जीने का क्या मजा, क्या सुख है ! भोगों के किनारे खड़े होने से जितना मजा आता है वह भोगों में डूबने से नहीं आता ।

दुश्चरित्र क्या है ? कोई आदमी बेईमानी से, झूठ-कपट करके धन कमाता है । धन कमाकर सुख चाहता है और कश्मीर जाकर हजारों रुपये खर्च करके आता है तो यह दुश्चरित्र है, श्रेष्ठ चरित्र नहीं है । दूसरा व्यक्ति श्रेष्ठ चरित्र से धन कमाता है, इधर-उधर नहीं करता, ईमानदारी से कमाता है लेकिन इंद्रिय-संयम नहीं है तो फिर उसको अंतर्सुख नहीं मिलेगा । ईमानदारी से उसने धन कमाया, झूठ-कपट नहीं किया लेकिन उसका

लक्ष्य धन-संग्रह करना है, परमात्मप्राप्ति नहीं है तो उसे भी आत्मानंद नहीं मिलेगा। कोई यज्ञ कर रहा है- **'इंद्राय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, कुबेराय स्वाहा...'** ठीक है, किंतु यह करने के पीछे उसका लक्ष्य क्या है ? परमात्मप्राप्ति है कि स्वर्ग की इच्छा है ? परमात्मप्राप्ति के सिवाय और कुछ भी प्राप्ति की इच्छा है तो समझ लो वह भी अभी संयतचित्त नहीं हुआ, अंतर्मुख नहीं हुआ । वह आत्मज्ञान के रास्ते नहीं है।

जहाँ आपका लक्ष्य है वहीं आप पड़े हैं। आप जो कर रहे हैं उसका इतना महत्त्व नहीं है, जिस उद्देश्य के लिए कर रहे हैं उस बात की बड़ी कीमत होती है । आप दुकान पर बैठे हैं, याद पत्नी की आती है कि ग्राहक की आती है कि परमात्मा की आती है ? दुकान पर आनेवाले ग्राहक के अंदर छुपा हुआ यार दिख रहा है कि ग्राहक की जेब के पैसे दिख रहे हैं ? आपका लक्ष्य क्या है इसी पर आपका शुभ-अशुभ निर्णय हो जाता है। आपका लक्ष्य सत्, परमात्मप्राप्ति है तो आपको तो प्रणाम है लेकिन जिस जगह पर आप पैर रखोगे उस जगह को भी प्रणाम है। आपका लक्ष्य कुछ कमाना है, कुछ चाहना है तो मेरे भैया ! आपका भी वही हाल होगा जो सबका होता है- 'मैं बहुत जल्दी में हूँ... बहुत जल्दबाजी है । मुझे ड्यूटी पर जाना है ।' सुबह उठना, दातुन करना, चाय पीना, नौकरी-धंधे पर जाना, खाना-कमाना, चमड़ा चाटना...; फिर सुबह वही चाय-कॉफी... दे धमाधम !

ड्यूटी पर जाना कोई मना नहीं है, जल्दबाजी करना कोई मना नहीं है लेकिन यह सब आप किसके लिए कर रहे हैं ? नौकरी किसके लिए कर रहे हैं ? पैसा किसके लिए कमा रहे हैं ? भोग भोगने के लिए कमा रहे हैं कि शरीर तंदुरुस्त बनाने के लिए कमा रहे हैं ? शरीर तंदुरुस्त किसलिए रख रहे हैं ? लंबा जीने के लिए रख रहे हैं कि परमात्मा को पाने के लिए ? इस बात का अगर आपने सूक्ष्म चिंतन नहीं किया तो भजन भी दुकानदारी हो जायेगी और समझकर दुकानदारी की तो दुकानदारी भी भक्ति बन जायेगी ।

परमात्मा को पीठ देकर और कुछ पाने की जो वासनाएँ हैं वे सब वासनाएँ दुश्चरित्र हैं। फिर आप गंगा नहाओ तो क्या, बदरीनाथ में रहो तो क्या, केदारनाथ में रहो तो क्या ? यह खा लिया फिर क्या ? इतना खा लिया फिर क्या ? इतना ओढ़ लिया फिर क्या ? इतना पी लिया फिर क्या ? इतना नाच लिया फिर क्या ? पूरे देश का राज्य आपके हाथ में आ गया लेकिन कब तक ? फिर क्या ? पूरे ब्रह्मांड की सत्ता आपके पास आ गयी फिर क्या ?

पृथ्वी की धूल के कण आप गिन सकते हो लेकिन इंद्र कितने हुए आप नहीं गिन सकते । ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह इंद्र बदलते हैं । ऐसे ब्रह्माजी सौ साल जीते हैं । हजारों-लाखों-करोड़ों ब्रह्माजी हो गये । आपके अल्प जीवन के भोग क्या हो सकते हैं ? अल्प जीवन की उपलब्धियाँ क्या हो सकती हैं ? अल्प जीवन के संबंध क्या हो सकते हैं ? इसलिए आप अल्प जीवन के भोगों को, संबंधों को, उपलब्धियों को विवेक की कैंची से काटकर परमात्मा के साथ अपने चित्त को जोड़ दो । ❑

कुशलतापूर्वक कर्म करना भी योग है । जिस समय जो कर्म करो वह पूरी समझदारी व तत्परता से करो । सिपाही हो तो सिपाही की ड्यूटी पूरी तत्परता से निभाओ और साहब हो तो उस पद का सदुपयोग करके सबका हित हो ऐसे कर्म करो । श्रोता बनो तो ऐसे बनो कि सुनी हुई सब बातें तुम्हारी बन जायें और वक्ता बनो तो ऐसे बनो कि परमात्मा से जुड़कर निकलनेवाली वाणी से अपना और दूसरों का कल्याण हो जाय ।

(आश्रम से प्रकाशित 'कर्म का अकाट्य सिद्धांत' पुस्तक से)

कर्म करने की कला

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

शरीर अनित्य है, प्रकृति अनित्य है, कर्म अनित्य है तो कर्म का फल भी अनित्य है। अनित्य फल भोगते-भोगते जन्मे और मरे। तो अब क्या करें ? क्या उपाय है ?

कर्म छोड़ दें यह संभव ही नहीं है। कर्म किये बिना रह नहीं सकते। कितने ही कर्म कर डाले, कितने ही जन्मों में झख मार के आये परंतु दुःखों से छुटकारा नहीं हुआ। 'पढ़ लेंगे तो सुखी हो जायेंगे, शादी हो जायेगी तो सुखी हो जायेंगे, इंजीनियर बन जायेंगे तो सुखी हो जायेंगे, सी.ए. बन जायेंगे तो सुखी हो जायेंगे... मंत्री बन जायें, महंत बन जायें, फलाने बन जायें...' बन-बन के सब बिगड़ गये। अंत में कुछ-न-कुछ दुःख रहता ही है और मौत भी सिर पर नाच रही है। मरे तो फिर जन्मे। अगर गर्भ नहीं मिला तो नाली में बहे। दुःख तो बना रहा। सब कर-कराने के बाद दुःख का अंत तो नहीं हुआ। दुःख कोई चाहता नहीं है। आखिर दुःख का अंत कैसे होगा ? अब क्या करें ?

दुःख के अंत का उपाय एकदम सुन्दर और सरल है।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्याऽऽत्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।
करोमि यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥

'शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, अहंकार से अथवा प्राकृत स्वभाव से मैं जो-जो करता हूँ, वह सब परम पुरुष भगवान नारायण के लिए ही है, इस भाव से उन्हें समर्पित करता हूँ।'

अशुभ से बचें और शुभ कर्म ईश्वर-अर्पण करें। अग्नि में कोयला डालो तो कालापन नहीं रहेगा चमक उठेगा, लोहा डालो चमक उठेगा। ऐसे ही आप अपने-आपको, अपने कर्मों को और अपने उद्देश्य को भगवानरूपी दिव्यता में डाल दो। भोजन तो करो लेकिन मजा लेने के लिए नहीं, 'भगवान को भोग लगा रहे हैं' इस भाव से खाओ। सोने के समय बोलो : 'महाराज ! हम आपकी गोद में आ रहे हैं।' सुबह उठो तो 'महाराज ! हमें आपसे पुष्टि मिली है। अब आप अपनी माया के संसार में जो खेल खिलवाना चाहते हैं, मैं खेलने आ रहा हूँ।'

खाओ-पीयो, उठो-बैठो लेकिन सब भगवान को अर्पित करो। कर्म जब अपने लिए करते हैं - कुछ पाने के लिए, कुछ बनने के लिए तो कर्मबंधन हो जाता है। कर्म भगवान की प्रसन्नता के लिए करें। जैसे कोयला अग्नि में डाल देने से उसका कालापन नहीं रहता है, ऐसे ही कर्म भगवान को अर्पित कर देने से कर्मबंधन नहीं होता।

पूतना जहर पिलाने को आयी, मारने को आयी तो भगवान ने उसको मार दिया। हिरण्यकशिपु मारने को दौड़ा तो भगवान ने उसको मार डाला। कंस ने मारने का षड्यंत्र किया तो उसको भी मार दिया। मार तो दिया लेकिन भगवान मुक्त हैं। भगवान का स्वभाव कहाँ जाय ? जो भी भगवान से भिड़े उन सबका कल्याण हो गया, सबको मुक्त कर दिया। जब भिड़नेवाले का कल्याण हो गया तो अर्पण करनेवाले का अकल्याण कैसे हो सकता है भाइयो, बहनो, माताओ !

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

'हे अर्जुन ! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर।' **(गीता : ९.२७)**

फिर दुःख की क्या ताकत है, चिंता की क्या ताकत है, फरियाद की क्या ताकत है, मुसीबत की क्या ताकत है कि आपके आगे फटक सके ? मुसीबत भगवान को दबा सकती है तो आपको दबा देगी। चिंता भगवान को हो सकती है तो आपको हो जायेगी। अरे, हम जैसों को चिंता नहीं होती तो भगवान को कैसे होगी ? मुसीबत हमारे आगे आकर मुसीबत में पड़ जाती है तो भगवान को क्या करेगी ?

'महाराज ! हम समर्पित करने में बेईमानी करें तो तू जबरन समर्पित करवा ले। हम मन-बुद्धि अर्पण न कर सकें तो तू छीन ले, पकड़ ले। काया से जो कुछ कर्म करें, तेरी प्रियता के लिए करें। मन से जो चिंतन करें, बुद्धि से जो निर्णय करें तेरी प्रीति के लिए करें। महाराज ! तुझे पाने की, तुझे खोजने की हममें ताकत नहीं क्योंकि हमारा तन नश्वर है, हमारे कर्म नपे-तुले हैं, हमारी बुद्धि अल्प है। हम अपने बल से तुझे नहीं खोज सकेंगे इसीलिए तूने हमें उपाय बताया कि तुम मुझे अर्पित हो जाओ। तरंग अपने बल से नहीं खोज सकती। तरंग अपने अहं को खो देती है तो स्वयं समुद्ररूप हो जाती है। ऐसे ही जीव अपने 'मैं' को तुझमें खो दे तो वह तुझरूप हो जाता है।'

इस प्रकार करो तो जीवन्मुक्त हो जाओगे, देर नहीं लगेगी। □

(दुःख दुःखी की भूल का शेष) नारायण की प्रीति से, निर्दुःख नारायण की पुकार से और निर्दुःख नारायण के साथ जिनकी एकता हुई है ऐसे महापुरुषों की कृपा से। अतः महापुरुषों के ज्ञान में टिक जाओ। □

दुःख दुःखी की भूल

- पूज्य बापूजी

दुःख दुःखी की भूल से होता है। बाहर से दुःख मिटता नहीं दुःख दबता है, दुःख की विस्मृति होती है। सुख की आशा से दुःख के भुलावे में पड़ते हैं। दुःख मिटता है दुःखहारी के प्रसाद से, दुःखहारी के ज्ञान से, दुःखहारी की प्रीति से। फिर दुःख आता नहीं और सुख मिटता ही नहीं। क्या ऐसा जीवन नहीं चाहिए ? दुःख आये नहीं, सुख मिटे नहीं।

सारी दुनिया का ज्ञान पा लो, सारी दुनिया की संपदा पा लो, सारी दुनिया की मेहरबानियाँ पा लो फिर भी सुख टिकेगा नहीं, दुःख मिटेगा नहीं लेकिन भगवान की मेहरबानी, भगवान का ज्ञान, भगवान की प्रीति पा लो तो सुख मिटेगा नहीं दुःख टिकेगा नहीं।

'जरा यह कर लूँ... जरा यह नौकरी कर लूँ... जरा कमा लूँ...' - यह अपनेको धोखा देना है। आर्त्त भाव, कातर भाव से भगवान को बोलो कि 'महाराज ! अपनी प्रीति दे दो। महाराज ! अपना ज्ञान दे दो। महाराज ! आपमें हम डूब जायें ऐसी कृपा कर दो।' पड़ो भगवान के पीछे। डॉलर क्या होता है ? राज्य क्या होता है ? दुनिया की साधन-सामग्री क्या होती है ? **ये फल साधन ते न होई।**

संसार के साधन से दुःख नहीं मिटेगा, दुःखी का दुःख उसकी अपनी भूल है। और यह भी उसकी अपनी भूल है कि वह संसार से दुःख मिटाना चाहता है- 'पति मेरा दुःख मिटा दे, पत्नी मेरा दुःख मिटा दे, दोस्त मेरा दुःख मिटा दे, बेईमानी मेरा दुःख मिटा दे...।' ये दुःख दबा देंगे, दुःख की विस्मृति करा देंगे, अनजाने में दुःख गहरा कर देंगे, दुःख मिटा नहीं सकते। दुःख मिटता है निर्दुःख नारायण के ज्ञान से, निर्दुःख

जीवन-ज्योत जगाओ

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

कोई हजारों वर्ष तप क्यों न करे, यह ब्रह्मविद्या गुरुकृपा से ही प्राप्त होती है। जब तक कोई जला हुआ दीया बुझे दीये को नहीं छूता है, तब तक दीया चाहे कितना भी तेल इकट्ठा कर ले, कितनी भी बाती बना ले... वैसे ही ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष का हृदय हमलोगों के हृदय को जब तक स्पर्श नहीं करता, तब तक हमें ब्रह्मतत्त्व का बोध नहीं होता है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। (गीता : ४.३४)

'परिप्रश्नेन' कह देते, साथ में 'प्रणिपातेन' व 'सेवया' क्यों कहा ?

प्रश्न करने से शब्द मिलेंगे। साथ में सेवा और प्रणिपात होने से शब्दों के पीछे महापुरुष का संकल्प, उनका संकेत, उनका अनुभव बहेगा।

वेदांत पढ़ना और सुनना एक बात है और वेदांतमय हो जाना निराली बात है। सत्पात्र, ब्रह्मज्ञानी के पुत्र और शिष्य वेदांत-अनुभव के अधिकारी माने गये हैं लेकिन पुत्र में अगर श्रद्धा नहीं है, शिष्यत्व नहीं है, पिता-भाव से देखता है तो कृपा नहीं पचेगी। जैसे एकनाथजी महाराज के शिष्यों ने उनसे लाभ लिया लेकिन उनका पुत्र नहीं ले सका।

देवताओं के गुरु बृहस्पति महाराज ने अपने पुत्र कच को उपदेश दिया कि अमृतत्व की प्राप्ति करनी हो तो सर्वत्याग करो। कच मृत्युलोक में आये, सब कुछ त्याग दिया, आठ वर्ष तक कंदराओं-गुफाओं में रहे। बृहस्पति महाराज जब आये तो कच ने उनकी पूजा गुरु की नाईं की। उसने कहा : ''भगवन् ! मैंने सर्वत्याग किया, अब क्या करूँ ?''

''सबका त्याग करो।'' ऐसा उपदेश देकर बृहस्पति चले गये। फिर तो कच ने कौपीन तक त्याग दी। कुछ कंदमूल खा लिये तो खा लिये, नहीं तो पड़े हैं, तप कर रहे हैं। तीन साल बाद फिर बृहस्पति आये तो कच अहोभाव से पूजन करके बोले : ''अभी तक अमृतत्व की प्राप्ति नहीं हुई। अमृतत्व ही ब्रह्म है, बाकी तो सब सापेक्ष है।''

पिता ने उपदेश दिया : ''तेरा जो कुछ है त्याग दे।''

उपदेश के पीछे संकल्प भी था। पहले ही संकल्प क्यों नहीं किया ? पहले संकल्प नहीं किया क्योंकि कषाय परिपक्व नहीं थे। ज्यों-ज्यों अन्तःकरण पवित्र होता है, त्यों-त्यों मान्यताएँ छूटती जाती हैं। जैसे भूमि की गोड़ाई की जाती है तब बीज काम देता है, सड़क पर बीज थोड़े ही काम देता है ? वैसे ही श्रद्धा-भक्ति से, विवेक से हृदय ज्यों-ज्यों पावन होता है, त्यों-त्यों महापुरुषों के वचन हमारे हृदय में स्थान पाते हैं। जैसे स्वच्छ कपड़ा अच्छी तरह रंग पकड़ लेता है फिर कपड़े की सफेदी नहीं रहती है, ऐसे ही श्रद्धा-भक्तिसहित जो अन्तःकरण है, विवेकी अन्तःकरण, उसमें ही ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों का संकल्प ठीक-से प्रविष्ट हो पाता है। फिर जीवत्व नहीं दिखेगा, ब्रह्मत्व रह जायेगा। लोगों की नजरों में बड़े-बड़े काम करते दिखोगे लेकिन तुम अंदर देखोगे तो कुछ नहीं, चित्त ऐसा ब्रह्मरंग से रँग जायेगा। ज्ञानी क्रोध करता हुआ, युद्ध करता हुआ, त्याग करता हुआ दिखेगा लेकिन अपने में वह न क्रोधी है, न योद्धा है, न त्यागी है।

साहेब मेरो रँगरेज, चुनरी मेरी रंग डारी।
धोये से छूटे नहीं, दिन दिन होत सुरंग॥ □

सच्ची स्वतंत्रता

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

शिष्य में इन तीन बातों का होना आवश्यक है : (१) वह अपना दोष निवृत्त करने में सावधानी रखे (२) शिष्य गुरु की स्थिति को समझे और (३) अविद्या मिटाने की शिष्य में तत्परता हो तथा उसके लिए वह यत्नशील रहे ।

गुरु को केवल चर्मचक्षुओं से ही नहीं देखना है, उनकी स्थिति को भी समझना है । तभी उनके यथार्थ ज्ञान को हम पा सकेंगे । गुरुजी स्थित हैं अपने आत्मस्वरूप में । भगवान श्रीकृष्ण को अर्जुन भी देख रहा है और शकुनि भी किंतु अर्जुन विषाद में और शकुनि कपट में उलझा हुआ है । जब अर्जुन ने श्रीकृष्ण को समझा, उनके तत्त्व को जाना तब फिर उसका विषाद न रहा । यदि कमबख्त शकुनि श्रीकृष्ण की स्थिति को समझता तो उसका कपट फिर शेष नहीं रहता । स्वामी विवेकानंदजी कहा करते थे : ''जो मैं तुम्हें दिखता हूँ, वह मैं नहीं हूँ । तुम मुझे समझो ।''

स्वामी अखंडानंदजी महाराज जैसे महापुरुष, जिनके पिता और वे स्वयं भी गुरु होकर पूजे जाते थे, वे कुल-परंपरा से ब्राह्मण थे और उनके पिताजी उच्च स्थिति के योगी थे । ऐसे अखंडानंदजी को भी गुरुद्वार पर कई बार डाँट पड़ती थी । एक बार गुरुजी बैठे थे तो कहा : ''गुरुजी ! वैसे तो बहुत अच्छा लगता है लेकिन जब आप डाँटते हो तो ऐसा-वैसा कुछ हो जाता है ।''

उनके गुरुजी बोले : ''तुम्हें दुनिया में न जाने कितना-कितना सहना पड़ता ! अगर गुरु के द्वार पर परिपक्व नहीं हुए तो दूसरे लोग तुम्हें परिपक्व करेंगे । कहाँ जाओगे ? यदि इधर नहीं सहा तो दूसरी जगह सहोगे ।''

जो एक गुरु की शरण में टिक जाता है उसे किसीकी शरण नहीं जाना पड़ता । जो एक की शरण में नहीं टिकता वह कइयों की शरण में भटकता रहता है, वह हजारों की शरण जायेगा । काम, क्रोध, लोभ, मोह की शरण जायेगा, अफसरों की शरण जायेगा । इस प्रकार न जाने कितनों की शरण जायेगा वह अभागा ! फिर उसका उद्धार होने का तो सवाल ही नहीं है ! अब मर्जी तुम्हारी... या तो एक मुझ ईश्वर, आत्मा की शरण लो या तो कइयों की दासता स्वीकार करो ।

कोई कहे कि हम अंतर्यामी ईश्वर की शरण जायेंगे तो 'अंतर्यामी ईश्वर' यह शब्द सीखा कहाँ से ? गुरु के द्वार पर ही सीखा न ! अनजाना देश है और अनदेखे पिया से मुलाकात करने के लिए यात्रा करनी है, संसार के बंधनों से मुक्त होकर जन्म-मरण से मुक्त होना है तो गुरु का द्वार छोड़कर तू कुछ भी कर ले -

कभी न छूटे पिण्ड दुःखों से,
जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं ।

संत तुलसीदासजी ने कहा है :

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद ।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम ॥

'यद्यपि बादल अमृत-सा जल बरसाते हैं तो भी बेंत फूलता-फलता नहीं । इसी प्रकार चाहे ब्रह्मा के समान भी ज्ञानी गुरु मिलें तो भी मूर्ख के हृदय में ज्ञान नहीं होता ।'

(रामचरित. लं.कां. : १६ ख)

जो मूर्ख लोग हैं वे ब्रह्मवेत्ता गुरु मिलने पर

भी वासना और अपनी मान्यता के कारण उनसे फायदा नहीं ले पाते । तुलसीदासजी ऐसे लोगों पर लानत बरसाते हैं :

सहज सुहृद गुर स्वामि
सिख जो न करइ सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर
अवसि होइ हित हानि ॥

'स्वाभाविक ही हित चाहनेवाले गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता, वह हृदय में भरपेट पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है ।'

(रामचरित. अयो.कां. : ६३)

बुद्धि जब संसार को महत्त्व देती है तो तत्त्वज्ञान का सत्संग मिलने पर भी समझते हैं कि हम बंधन में हैं और खाना-पीना, मौज करना आदि को समझते हैं कि हम स्वतंत्र हो रहे हैं, अपने पैर पर खड़े हो रहे हैं । ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु का शिष्य बाह्य साधनों को इकट्ठा करके सुखी रहना चाहता है तो समझो उसने सत्संग को पचाया ही नहीं है, उसने सद्गुरु के सिद्धांत को जाना ही नहीं है । पहले यह तो समझो कि कौन-सा अपना पैर होता है ? कमाया, खाया, नौकरी की, बेटे किये, गाड़ी ली - क्या ये अपने पैर हैं ? अरे, कब मर जायेंगे और प्रेत हो जायेंगे, क्या पता ? गर्भ न मिले और नाली में बह जायें तो ? क्या यह अपने पैर पर खड़े रहने जा रहे हैं ? सोचते हैं कि 'मैं कमाकर बड़े ठाठ से रहूँगा' तो करोड़ों लोग कमा-कमाकर परेशान हो रहे हैं, अनिद्रा के रोगी बन रहे हैं । १०-१५ हजार क्या हजारों-लाखों रुपये वेतन मिल जाय तो भी मैं कहूँगा कि यह अपने पैर पर खड़े रहना नहीं है, यह तो पैसों के पैर पर खड़े रहना है, विषय-विकारों के पैर पर खड़े रहना है।

वास्तव में तो अपने पैर पर खड़े रहने का अर्थ है अपने आत्मा में आना । ब्रह्मवेत्ता गुरु के सत्संग के अलावा अपने पैरों पर खड़े रहने के लिए कोई जगह नहीं है । जो ईमानदारी से सत्संग, सेवा व ध्यान-भजन करता है वही सच्चा साधक है किंतु बुद्धि मारी जाती है तो अपने पैरों को पराये पैर मानते हैं और पराये पैरों को अपने पैर मानते हैं । इन्द्रिय, विषय-विकारों के अधीन होने को कहते हैं हम अपने पैर पर खड़े रहेंगे, हम स्वतंत्र रहेंगे !

संत विनोबा भावे के पास एक साधक आया और बोला : ''गुरुजी ! अब मुझे यह आश्रम अच्छा नहीं लगता, अब मैं जा रहा हूँ ।''

''कहाँ ?''

''अब मैं स्वतंत्र रहूँगा । मुझे यहाँ अनुकूल नहीं पड़ता । मैं आश्रम के नियम नहीं पाल सकता ।''

''उसका मतलब अब तुम जैसा मन में आयेगा ऐसा ही करोगे ?''

''हाँ ।''

''मतलब तुम गुलाम की शरण जाना चाहते हो । मन तो है हमारा गुलाम और जो गुलाम कहेगा वह करूँगा, गुरु के सिद्धांत के अनुसार नहीं करूँगा अर्थात् गुलाम के गुलाम होने को जा रहे हो । ठीक है ।''

गुरु और धर्म के अनुरूप गुलाम को नहीं करना है लेकिन तुमको गुलाम के कहने में चलना है ! वाह ! बड़ा आविष्कार है ! आविष्कार क्या है, दुर्बुद्धि है ! गुरु व गुरुभाइयों से झूठ-कपट किया होगा, कुछ-न-कुछ उसके द्वारा जघन्य अपराध हो गया होगा, तभी सत्संग से भागने की रुचि होती है, सीधी बात है ।

विनोबा भावे के आश्रम में भी कई ऐसे आये उनमें जो पापात्मा, अभागे थे वे भाग गये । मेरे गुरुजी के आश्रम में तो कई आये, उनमें से कइयों

की सद्बुद्धि हुई, कइयों की आंशिक सद्बुद्धि हुई और कई दुर्बुद्धि भाग गये। इसमें मेरे गुरुजी को क्या घाटा हुआ ? कोई २ प्रतिशत, कोई ५-२५ प्रतिशत लेकर भागा और कोई दुर्बुद्धि निंदक हो गया तो उसका ही विनाश हुआ। इसमें मेरे गुरुजी का क्या बिगड़ा ?

विनोबा भावे का शरीर शांत होने के बाद किसी तुच्छ मति के लेखक ने उनके आश्रम और आश्रम की व्यवस्था की निंदा कर दी तो इससे क्या फर्क पड़ा ? जिसकी जैसी हलकी मानसिकता होती है वह वैसा हलका बोलेगा। आधा ग्लास पानी भरा हुआ रखो तो दोषी को आधा ग्लास खाली दिखेगा और समझदार को आधा ग्लास भरा दिखेगा। बुद्धि जब सत्य से हटती है, गुरु से कपट करते हैं या मति अभिश्रापित हो जाती है, व्यक्ति गुरु के हृदय से उतर जाता है तो उसे फ़िर साधन-भजन की जगह से भागने की इच्छा होती है। इतना-इतना सत्संग मिलने पर भी पता नहीं चलता क्योंकि किसीकी निंदा की होगी, झूठ-कपट किया होगा। इसीलिए हमने इस भजन पर जोर दिया है :

हे प्रभु ! आनंददाता !! ज्ञान हमको दीजिये।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिये ॥
निंदा किसीकी हम किसीसे भूलकर भी ना करें।
ईर्ष्या कभी भी हम किसीसे भूलकर भी ना करें ॥
सत्य बोलें झूठ त्यागें, मेल आपस में करें।
दिव्य जीवन हो हमारा यश तेरा गाया करें ॥
हे प्रभु ०

अतः अपने मन को सावधान कर दो कि किसीकी भी निंदा कर रहे हो तो वह ब्रह्म की, ईश्वर की निंदा कर रहे हो। उससे पुण्य नाश होता है। आपस में गपशप करते समय भी ध्यान रखो कि कहीं निंदा तो नहीं हो रही है... सावधान ! सबमें ईश्वर... सबमें ब्रह्म... ॐ... ॐ... ॐ... □

पुण्य संचय व ईश्वर की परम कृपा का फल : ब्रह्मज्ञान का दिव्य सत्संग

''ईश्वर की कृपा होती है तो मनुष्य-जन्म मिलता है। ईश्वर की अतिशय कृपा होती है तो मुमुक्षुत्व का उदय होता है परंतु जब अपने पूर्वजन्मों के पुण्य इकट्ठे होते हैं और ईश्वर की परम कृपा होती है, तब ऐसा ब्रह्मज्ञान का दिव्य सत्संग सुनने को मिलता है, जैसा पूज्यपाद बापूजी के श्रीमुख से आपको यहाँ सुनने को मिल रहा है।''

– प्रसिद्ध कथाकार सुश्री कनकेश्वरी देवी।

भगवन्नाम का जादू

''संत श्री आसारामजी बापू के यहाँ सबसे अधिक जनता आती है कारण कि इनके पास भगवन्नाम-संकीर्तन का जादू, सरल व्यवहार, प्रेमरसभरी वाणी तथा जीवन के मूल प्रश्नों का उत्तर भी है।''

– विरक्तशिरोमणि श्री वामदेवजी महाराज।

''स्वामी आसारामजी के पास भ्रांति तोड़ने की दृष्टि मिलती है।''

– युगपुरुष स्वामी श्री परमानंदजी महाराज।

''आसारामजी महाराज ऐसी शक्ति के धनी हैं कि दृष्टिपातमात्र से लाखों लोगों के ज्ञानचक्षु खोलने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।''

– सुप्रसिद्ध स्वामी श्री ब्रह्मानंदगिरिजी महाराज।

''हमारे पूज्य आसारामजी बापू बहुत ही कम समय में संस्कृति का जतन और उत्थान करनेवाले महान संत हैं।'' **– आचार्य श्री गिरिराज किशोरजी, विश्व हिन्दू परिषद।** □

जीवन को दिव्य बनानेवाली पूनम गुरुपूनम

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

गुरुपूनम का अन्य सभी पूनमों से ज्यादा महत्त्व है क्योंकि इसमें तप, श्रद्धा के साथ ज्ञान की विशेषता है। समाज जिधर मुड़ता है उस चीज का विशेष प्रचार होता है। फिल्मों की तरफ समाज मुड़ा तो बच्चे-बच्चियाँ अभिनेता-अभिनेत्रियाँ बनने की धुन में लगे हैं। धन का आदर बढ़ा तो लोग छल-कपट करके धनवान होने की होड़ में शामिल हो गये परंतु समाज की वास्तविक उन्नति तो ब्रह्मविद्या का आदर होने से ही होती है, उसीसे समाज को सही दिशा मिलती है । जैसे बिना आँख के सारी मिल्कियत, सारा वैभव व्यर्थ हो जाता है, ऐसे ही बिना ज्ञान के आत्मवैभव व्यर्थ न हो जाय इसलिए ज्ञानसंयुक्त तपवाली जो यह गुरुपूनम है यह सभी पूनमों से महत्त्वपूर्ण है, बड़ी है। ज्ञानमय तप की प्रेरणा देनेवाली, जीवन में निखार लानेवाली, सर्वांगीण विकास करानेवाली जो पूर्णिमा है उसे ही गुरुपूर्णिमा अथवा व्यासपूर्णिमा कहते हैं ।

इस पूनम से संन्यासी, तपस्वी चतुर्मास का आरंभ करते हैं। साधक संकल्प करते हैं कि 'इस चतुर्मास में अनुष्ठान करूँगा और अपनी शक्तियों को विकसित करूँगा । ऐसा नहीं कि हमें भोगी लोग निचोड़कर फेंक दें और हम लाचार हो जायें, साधना के मार्ग से विचलित हो जायें । नहीं, हम अपने जीवन की ज्योत को जगायें, जिस स्वरूप में गुरुदेव जगे हैं उस 'सोऽहं' स्वरूप को जगायें । अंधकार को मिटाकर आत्मप्रकाश कराने में उत्साहित कर प्रेरणा और मार्गदर्शन देनेवाली पूनम का नाम है गुरुपूनम ।

गुरु शब्द का अर्थ होता है 'बहुत बड़ा'। बड़े-में-बड़े परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान से जो सम्पन्न हैं, ऐसे व्यासतुल्य ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों का सान्निध्य दिलाती है गुरुपूनम। बाह्य सान्निध्य के साथ-साथ जब हम उनसे श्रद्धा-भक्ति से जुड़ते हैं तो हमारा भी अंतःकरण बदलता है।

यह कहावत तो प्रसिद्ध है कि 'खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है।' ऐसे ही गुरु को देखकर शिष्य का भी रंग बदलने लगता है, वह उन्नत होने लगता है। अभिनेता-अभिनेत्री को देखकर मनुष्य उस भाव में बहने लगता है, हीन वृत्तियों में जीनेवाले शराबी-कबाबी का संग करने से उसका रंग चढ़ता है लेकिन जब संतों का, गुरु का संग होता है तो गुरु के प्यारों का भी दिल बदलता है। जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ निःस्वार्थता और जहाँ अहं होता है वहाँ सज्जनता, सरलता आती है। जहाँ विकारी आकर्षण होता है वहाँ निर्विकारी नारायण का आकर्षण उभरने लगता है। जहाँ नश्वर की माँग रहती है वहाँ शाश्वत की तरफ झुकाव होने लगता है।

व्यासपूनम व्यापक आध्यात्मिक प्रसाद बाँटने में बड़ी सहायता करती है, इसलिए सारे व्रत-उत्सवों से भी यह बढ़कर है। इसका आदर मनुष्य तो करते ही हैं, देवता भी करते हैं। जीवन को दिव्य बनानेवाली, सनातन सत्य से जुड़ने में सहायता करनेवाली यह पूनम है। जैसे पूनम का चाँद पूर्ण कलाओं से विकसित होता है ऐसे ही

जीवन को पूर्ण ढंग से विकसित करने के लिए यह पर्व बहुत सहायक सिद्ध होता है। ईश्वर में तदाकार होने के लिए यह पर्व मनाया जाता है।

जो तेरे दीदार के आशिक हैं वे समझाये नहीं जाते।
कदम रखते हैं आगे तो फिर लौटाये नहीं जाते।

इस दिन सुबह बिस्तर पर तुम प्रार्थना करना : ''हे महान पूर्णिमा! हे गुरुपूर्णिमा ! अब हम अपनी आवश्यकता की ओर चलेंगे । इस देह की संपूर्ण आवश्यकताएँ कभी किसीकी पूरी नहीं हुईं। हुई भी तो संतुष्टि नहीं मिली। अपनी असली आवश्यकता की तरफ हम आज से कदम रख रहे हैं।''

उसी समय ध्यान करना। शरीर बिस्तर छोड़े उसके पहले अपने प्रियतम को मिलना। गुरुदेव का मानसिक पूजन करना । वे तुम्हारे मन की दशा देखकर भीतर-ही-भीतर संतुष्ट होकर अपनी अनुभूति की झलक से तुम्हें आलोकित कर देंगे। उनके पास उधार नहीं है, वे तो नगदधर्मा हैं। □

* मनुष्य को पदार्थ एवं प्रकृति के बंधनों से मुक्ति दिलाना और गुरु को सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करके 'स्व' के अबाध्य स्वतंत्र स्वभाव का भान कराना,यह गुरुभक्तियोग का हेतु है ।

* जो व्यक्ति गुरुभक्तियोग का अभ्यास करता है वह बिना किसी विपत्ति के अहंभाव को निर्मूल कर सकता है, मलिन संसार-सागर को बहुत सरलता से पार कर जाता है और अमरत्व एवं शाश्वत सुख प्राप्त करता है ।

* गुरुभक्तियोग मन को शांत एवं निश्चल बनानेवाला है।

* गुरुभक्तियोग दिव्य सुख के द्वार खोलने की अमोघ कुंजी है ।

* गुरुभक्तियोग के द्वारा सद्गुरु की कल्याणकारी कृपा प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य है । **(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'गुरुभक्तियोग' से)**

खोजत-खोजत युग गये...

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक यात्री जयपुर से किसी डिलक्स बस में बैठा। बस खूब तेज चलती थी। दो-तीन घंटे की यात्रा हुई, फिर थोड़ा कहीं चाय-पानी के लिए बस रुकी। जब बस चली तब ड्राइवर ने रेडियो खोला तो आवाज आयी कि 'यह रेडियो दिल्ली है।' यात्री ड्राइवर को बोला : ''गाड़ी रोको।'' उसने माना दिल्ली आ गयी। बेचारा अटैची लेकर उतरा। छोटा-सा गाँव था। सुबह ७-८ बजे उतरा, शाम तक घूमा पर लालकिला तो दिखा नहीं। शाम को कोई उसका मित्र दिखा। बोले : ''भाई ! मुझे आप लालकिला दिखाओ।''

उसने मारा थप्पड़।

''बेवकूफ ! मैं भी सुबह से घूम रहा हूँ, मुझे कुतुबमीनार नहीं मिल रही है। तू मुझे कुतुबमीनार दिखा दे तो मैं तुझे अभी लालकिला दिखा दूँ।''

जहाँ पहुँचना था वहाँ नहीं पहुँचे, पहले ही उतर गये। जहाँ कुतुबमीनार था, लालकिला था वहाँ तक यात्रा नहीं की, रास्ते में रुक गये और उसीको मंजिल समझ बैठे। वे दिन भर भटकें, साल भर भटकें, जिंदगी भर भटकें; उन दोनों को उसी इलाके में न लालकिला मिल सकता है, न कुतुबमीनार मिल सकती है। ऐसे ही मनचले, मन के दास आधे रास्ते में ही उतर जाते हैं, फिर वे जिंदगी भर माला घुमाते रहें,

मँजीरे ठोकते रहें फिर भी वह परमात्मारूपी लालकिला नहीं मिलता और न शांतिरूपी अचल कुतुबमीनार मिल सकती है । यह उन यात्रियों की ही बात नहीं है, हम भी उन यात्रियों के भाई हैं । हमारा भी तो यही हाल है ! उन्होंने तो शायद एक दिन के लिए गलती की होगी, दो दिन के लिए की होगी, हमने तो हजारों-हजारों जिंदगियों में यह गलती की है ।

वसिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! मेरु के शिखर से लेकर चरणोंपर्यन्त गंगा का प्रवाह चले तो उसके बालू के कण चाहे गिने जा सकें परंतु संसक्त (सांसारिक विषय-वासना में लगे हुए) जीव के शरीरों की संख्या नहीं गिनी जा सकती ।''

इस जीव ने कितने जन्म लिये हैं, कितनी माताओं के गर्भों से बेचारा भटका है उनकी कोई गिनती नहीं है । अगर उसको सद्गुरु मिल जायें, परमात्मा में प्रीति हो जाय और लगा रहे तो यही जीव अचल शांति को पा ले, परमात्मा को पा ले ।

सद्गुरु का जो सत्संग है वह आदमी को सत्यस्वरूप ईश्वर में बिठाता है, शांतस्वरूप परमात्मा का अनुभव कराता है । अंदर का आराम, अंदर का सुख और अंदर के ज्ञान की ज्योति जगाता है । दीये की ज्योति तो गरम होती है और वस्तुओं को जलाती है लेकिन अंदर के ज्ञान की ज्योति जब गुरु जगा देते हैं तो वह वस्तुओं को जलाती नहीं है बल्कि जीवन में प्रकाश ले आती है, शांति ले आती है, माधुर्य ले आती है । जिनके हृदय में वह अचल शांति हुई उनकी आँखों में जगमगाता आनंद, संतप्त हृदयों को शांति देने का सामर्थ्य, अज्ञान में उलझे हुए जीवों को आत्मज्ञान देने की उनकी शैली अद्वितीय होती है । ऐसे पुरुष लाखों लोगों का अंतःकरण भगवदाकार बना देते हैं और ऐसा करने में आप भी सक्षम हो सकते हैं अगर आप सत्संग का सहारा लेकर दिल-मंदिर में आने का प्रयास करें और उस आत्मा-परमात्मा का ज्ञान पा लें ।

जैसे वे यात्री दिल्ली का ज्ञान पा लेते तो उनको भटकना नहीं पड़ता, ऐसे ही हम दिलबर का, अपने 'सोऽहं' स्वभाव का ज्ञान पा लें तो फिर माताओं के गर्भों में भटकना नहीं पड़ेगा ।

संत कबीरजी कहते हैं :

भटक मुआ भेदु बिना पावे कौन उपाय ।
खोजत-खोजत युग गये पाव कोस घर आय ॥

सुख को खोजते-खोजते, शांति को खोजते-खोजते युग चले गये... तुम घर से उत्साहित होकर निकलते हो- इधर जायेंगे, उधर जायेंगे... लेकिन जब थक जाते हो तो यही लगा रहता है कि कब घर पहुँचें, बहुत हो गया । आदमी अपने घर से निकलता है तो बड़े उत्साह से, लेकिन लौटता है तो अंत में थककर पहुँचता है । कहीं भी जाय लेकिन आखिर घर में तो आना पड़ता है, ऐसे ही यह जीवात्मा कितने ही शरीरों में चला जाय, जब तक आत्मा-परमात्मारूपी घर में नहीं आयेगा तब तक उसको पूरी विश्रांति नहीं मिलेगी । होटल चाहे कितना भी बढ़िया हो, धर्मशाला चाहे मुफ्त में भी हो लेकिन अपने घर तो पहुँचना ही पड़ता है । ऐसे ही शरीररूपी होटल चाहे कितना बढ़िया मिल जाय अथवा शरीररूपी सराय चाहे कितनी भी सुंदर और सुहावनी मिल जाय फिर भी इस जीवात्मा को अपने परमात्मारूपी घर में पहुँचना ही पड़ेगा । चाहे इस जन्म में पहुँचे, दस जन्म के बाद पहुँचे, सौ जन्म, लाख-करोड़ जन्मों के बाद पहुँचे, अंत में उसको वहाँ पहुँचना तो पड़ेगा ही ! अभी से उस आत्मदेव का ज्ञान पाओ, उससे प्रीति करो, उसमें विश्राम पाओ और निहाल हो जाओ । □

श्रद्धा बिना सब व्यर्थ है

चन्दन वास्तव में शीतल होता है। अग्नि के साथ उसका संयोग हो जाय और उस अवस्था में उसे हाथ में उठाया जाय तो हाथ का जलना स्वाभाविक है।

घटिया सोने में थोड़ा-सा खरा सोना मिला दिया जाय और उसे खरा सोना मान लिया जाय तो यह मूढ़ता है। ठीक इसी प्रकार श्रद्धा का सत्त्व भी वास्तव में खरा ही है लेकिन जिसकी जैसी वृत्ति होती है उसकी श्रद्धा उसके अनुरूप के विषयों में होती है।

प्राणियों की श्रद्धा उनके गुणों के अनुसार होती है। वह तीनों गुणों से घिरी हुई रहती है और इसलिए उसके राजस, तामस और सात्त्विक ये तीन भेद होते हैं। जल तो एक महत्त्वपूर्ण जीवन-तत्त्व है पर वही जल विष में मारक होता है, मिर्च में तीक्ष्ण होता है और गन्ने में मीठा होता है। इसी प्रकार श्रद्धा जिन-जिन गुणों से एकाकार होती है उसी प्रकार का रूप ले लेती है। इस प्रकार यह सारा जगत श्रद्धामय ही है, श्रद्धा के बिना कुछ संभव नहीं है।

श्रद्धा के बिना करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये जायें, रत्नों से भरकर सारी पृथ्वी दान कर दी जाय, एक अँगूठे पर खड़े रहकर सहस्रों वर्ष तप किये जायें, बड़े-बड़े तालाब और कुएँ आदि बनवाये जायें परंतु ये सब निष्फल होते हैं।

जिस प्रकार पत्थर पर बरसा हुआ जल, राख में दी हुई आहुति, छाया के साथ किया हुआ आलिंगन अथवा आकाश को मारा हुआ थप्पड़ व्यर्थ होता है, उसी प्रकार ये श्रद्धारहित समस्त कर्म बिल्कुल व्यर्थ हो जाते हैं।

कोल्हू की घानी में पत्थर के टुकड़े डाले जायें तो उनमें से न तो तेल ही निकलता है और न खली ही निकलती है। ठीक इसी प्रकार इस तरह के कर्मों के आचरण से पारलौकिक लाभ की बात तो दूर रही, कोई ऐहिक लाभ भी नहीं होता है। **– श्री ज्ञानेश्वरजी महाराज**

तात्पर्य यह है कि श्रद्धारहित कर्म फल भी नहीं देते और जीवन रसविहीन हो जाता है। कोई किसीका हाथ-पैर तोड़ दे तो यह अपराध तो है लेकिन उससे भी भयंकर वह है जो श्रद्धा तोड़कर हमारा जीवन आध्यात्मिकता, परमात्म-रास्ते से तो गिराता ही है, साथ ही ऐहिक सुख-शांति भी हर लेता है।

कबीरा निन्दक ना मिलो, पापी मिलो हजार।
एक निन्दक के माथे पर, लाख पापिन को भार॥

श्रद्धा तोड़नेवाला व्यक्ति कबीरजी की दृष्टि से कितना घातक सिद्ध होता है! ऐसे ही नानकजी, तुलसीदासजी आदि संतों ने भी श्रद्धा तोड़नेवालों को खूब लानत दी है। □

* श्रद्धा माने गुरु में विश्वास।

* गुरु में सम्पूर्ण श्रद्धा रखो और अपने-आपको पूर्णतः गुरु की शरण में ले जाओ। वे आपकी निगरानी करेंगे। इससे सब भय, अवरोध एवं कष्ट पूर्णतः नष्ट होंगे।

* सद्गुरु में दृढ़ श्रद्धा आत्मा की उन्नति करती है, हृदय को शुद्ध करती है एवं आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाती है।

* गुरु के उपदेशों में सम्पूर्ण श्रद्धा रखना, यह शिष्यों का सिद्धान्त होना चाहिए।

(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'गुरुभक्तियोग' से)

जीवनशक्ति का विकास

हमारे शारीरिक व मानसिक आरोग्य का आधार हमारी जीवनशक्ति है। वह 'प्राणशक्ति' भी कहलाती है। हमारे जीवन जीने के ढंग के मुताबिक हमारी जीवनशक्ति का ह्रास या विकास होता है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने योगदृष्टि से, आंतरदृष्टि से और जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करके जीवनशक्ति विषयक गहनतम रहस्य खोज लिये थे।

'प्रश्नोपनिषद्' में आता है : '७२ करोड़ ७२ लाख १० हजार २०१ नाड़ियाँ हैं।' लगभग शब्द नहीं दिया है। दो सौ के ऊपर एक भी लिख दिया है। कैसा सूक्ष्मतम विश्लेषण है ! हम भोजन करते हैं लगभग एक किलो, पानी पीते हैं दो किलो, श्वास लेते हैं २१६००, उससे वायु भीतर लेते हैं ९००० लीटर। अंदर उस ९००० लीटर वायु में से दस किलो भोजन की शक्ति पाते हैं। शरीर के लिए अधिक-से-अधिक पौष्टिक चीज कौन-सी है ? घी, दूध, पिस्ता, बादाम, केसर, कस्तूरी या और कोई महँगी चीज इतनी पौष्टिक नहीं है जितनी गाय के गोबर के कंडे पर गाय के घी का एक चम्मच धूप करने से उत्पन्न वायु। इससे एक टन अत्यंत जीवन-पोषक वायु बनती है। ऐसे में कुटुंब के लोग बैठकर, पड़ोस के लोग बैठकर अगर प्राणायाम करें तो कितना फायदा उठाया जा सकता है इसका बयान नहीं हो सकता। शुद्ध, सात्त्विक, सदाचारी जीवन और विधिवत् योगाभ्यास के द्वारा जीवनशक्ति का विकास करके कैसी-कैसी ऋद्धि-सिद्धियाँ हासिल की जा सकती हैं, आत्मोन्नति के कितने उत्तुंग शिखरों पर पहुँचा जा सकता है, इसकी झाँकी महर्षि पतंजलि के 'योगदर्शन' तथा अध्यात्मविद्या के शास्त्रों में मिलती है। योगाभ्यास आदि से जीवनशक्ति ऐसी विकसित होगी कि दुःख दबोचेगा नहीं और सुख भोगी नहीं बनायेगा। दोनों का सदुपयोग करके मनुष्य शमवान, आत्मवान होकर जीवन्मुक्त हो जायेगा। जो स्वर्ग से भी बड़ी है, साकार दर्शन से भी बड़ी है उस भगवत्प्रीति, भगवद्विश्रांति व जीवन्मुक्ति का अधिकारी मनुष्य दुःखों में, कष्टों में, पीड़ाओं में पीड़ा जा रहा है। अतः सावधान !

योगविद्या व ब्रह्मविद्या के इन सूक्ष्मतम रहस्यों का लाभ जाने-अनजाने में भी आम जनता तक पहुँच जाय इसलिए प्रज्ञावान ऋषि-महर्षियों ने सनातन सत्य की अनुभूति के लिए जीवन-प्रणाली बनायी, विधि-निषेध का ज्ञान देनेवाले शास्त्र और विभिन्न स्मृतियों की रचना की। मानव यदि ईमानदारी से शास्त्रविहित मार्ग पर चलकर जीवनयापन करे तो उसकी जीवनशक्ति अपने-आप विकसित होती रहेगी, शक्ति का ह्रास होने के प्रसंगों से वह बच जायेगा। उसका जीवन उत्तरोत्तर उन्नति के मार्ग पर चलकर अंत में आत्मविश्रांति के पद पर पहुँच जायेगा।

प्राचीनकाल में मानव का अन्तःकरण शुद्ध था, उसमें परिष्कृत श्रद्धा का वास था। वह गुरु और शास्त्रों के वचनों के मुताबिक आत्मोन्नति के मार्ग पर चल पड़ता था। आजकल का मानव प्रयोगशील और वैज्ञानिक अभिगमवाला हो रहा है। विदेश में कई बुद्धिमान, विद्वान, वैज्ञानिक वीर हमारे ऋषि-महर्षियों के आध्यात्मिक खजाने को प्रयोगशील, नये अभिगम से खोजकर विश्व

के समक्ष प्रमाणित कर रहे हैं कि वह खजाना कितना सत्य और जीवनोपयोगी है ! डॉ. डायमण्ड ने जीवनशक्ति पर गहन अध्ययन व प्रयोग किये हैं। किन-किन कारणों से जीवनशक्ति का विकास होता है और कैसे-कैसे उसका ह्रास होता रहता है, इसके बारे में उन्होंने यह बताया है। निम्नवर्णित बातों का प्रभाव हमारी जीवनशक्ति पर पड़ता है :

(१) मानसिक आघात, खिंचाव, घबड़ाहट या तनाव का प्रभाव :

डॉ. डायमण्ड ने कई प्रयोग करके देखा कि जब कोई व्यक्ति अचानक किसी तीव्र आवाज को सुनता है तो आवाज के आघात के कारण उसी समय उसकी जीवनशक्ति क्षीण हो जाती है, वह घबड़ा जाता है । वन में वनकेसरी सिंह गर्जना करता है, तब हरिणादि प्राणियों की जीवनशक्ति क्षीण हो जाती है । वे डर के मारे इधर-उधर भागदौड़ करते हैं । इससे सिंह को शिकार पाने में ज्यादा परिश्रम नहीं करना पड़ता ।

मान लो, किसी डॉक्टर को अपने किसी मरीज से सन्तोष नहीं है। डॉक्टर से कहा जाय कि वह मरीज आपसे मिलना चाहता है तो डॉक्टर की जीवनशक्ति क्षीण होने लगती है। यदि उससे कह दिया जाय कि तुम्हारी कसौटी की जा रही है तो भी उसकी जीवनशक्ति का ह्रास रुकता नहीं। डायमण्ड ने यंत्रों के द्वारा देखा कि अगर डॉक्टर अपनी जिह्वा का अग्र भाग तालुस्थान में, दाँतों से करीब आधा से.मी. पीछे लगाकर रखे तो उसकी जीवनशक्ति का ह्रास होने से बचाव हो जाता है ।

तालुस्थान में जिह्वा लगाने से जीवनशक्ति केन्द्रित हो जाती है। इसीलिए प्राचीनकाल से ही योगीजन तालुस्थान में जिह्वा लगाकर जीवनशक्ति को बिखरने से रोकते रहे होंगे। डॉ. डायमण्ड ने मंत्रजप तथा ध्यान करनेवाले साधकों पर प्रयोग करके निष्कर्ष निकाला कि जप व ध्यान के समय इस प्रक्रिया से जिन साधकों की जीवनशक्ति केन्द्रित होती थी उनमें जप-ध्यान से शक्ति बढ़ रही थी, वे अपनेको बलवान महसूस कर रहे थे । अन्य साधक जो इस क्रिया के बिना जप-ध्यान करते थे उन साधकों की अपेक्षा दुर्बलता महसूस करते थे । जिह्वा को जब तालुस्थान में लगाया जाता है तब मस्तिष्क के दायें और बायें दोनों भागों में सन्तुलन रहता है । जब ऐसा सन्तुलन होता है तब व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है, सर्जनात्मक प्रवृत्ति खिलती है, प्रतिकूलताओं का सामना सरलता से हो सकता है । जब सतत मानसिक तनाव-खिंचाव, घबड़ाहट, तनाव का समय हो तब जिह्वा को तालुस्थान से लगाये रखने से जीवनशक्ति क्षीण नहीं होती । शक्ति-सुरक्षा का यह एक अच्छा उपाय है ।

जो बात आज वैज्ञानिक सिद्ध कर रहे हैं, वह हमारे ऋषि-मुनियों ने प्राचीनकाल से ही प्रयोग में ला दी थी । खेद है कि आज का मानव इसका फायदा नहीं उठा रहा है ।

कुदरती दृश्य देखने से, प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्र देखने से, जलराशि, सरिता-सरोवर-सागर आदि देखने से, हरियाली व वन आदि देखने से, आकाश की ओर निहारने से हमारी जीवनशक्ति बढ़ती है । इसीलिए हमारे देवी-देवताओं के चित्रों के पीछे इस प्रकार के दृश्य रखे जाते हैं ।

कोई प्रिय काव्य, गीत, भजन, श्लोक आदि का वाचन, पठन, उच्चारण करने से भी जीवनशक्ति का संरक्षण होता है ।

चलते वक्त दोनों हाथ आगे-पीछे हिलाने से भी जीवनशक्ति का विकास होता है । **(क्रमशः)**

(आश्रम से प्रकाशित 'जीवन विकास' पुस्तक से) □

महावेदांती श्री तोतापुरीजी महाराज

(गतांक से आगे)

ताप और संघर्ष को अनुचर बनाया :

धूपबत्ती अपनी सुरभि से वायुमण्डल को सुरभित नहीं कर पाती यदि अग्निस्नान उसे मान्य नहीं होता। अग्निताप को सहकर ही सोना चमक उठता है। ताप और संघर्ष की दुनिया में वही व्यक्तित्व चमकता है, जो उसे सहता है।

तोतापुरीजी अपनी चेतना में निखार लाने के लिए कृतसंकल्प थे।

परमहंस स्थिति की प्राप्ति :

नागाओं की मण्डली के महंत-निर्वाचन की प्रथा के संबध में तोतापुरीजी से श्री रामकृष्णदेव को विदित हुआ था : 'नागाओं में जिसे परमहंस दशा की प्राप्ति होती थी, गद्दी खाली होने पर सब उसे ही महंत निर्वाचित कर गद्दी पर बैठाते थे। अन्यथा धन, सम्मान तथा अधिकार प्राप्त कर विरक्त बने रहना उसके लिए कैसे संभव हो सकता था ? उसके मस्तिष्क का संतुलन नष्ट हो जाना स्वाभाविक था। इसलिए जिसके हृदय से कांचन की आसक्ति यथार्थ में दूर हो जाती थी, उसे ही गद्दी पर बैठाकर रुपये-पैसे का भार सौंपा जाता था क्योंकि ऐसे व्यक्ति के द्वारा ही देवता तथा साधुओं की सेवा में उस धन का ठीक-ठीक उपयोग होना संभव था।'

अपने परिव्रज्या-काल में पुण्यतोया नर्मदा के तट पर दीर्घकाल तक एकांतवास करते हुए साधन-भजन में निमग्न रहकर तोतापुरीजी ने इससे पूर्व निर्विकल्प समाधि मार्ग से ब्रह्म-साक्षात्कार किया था, यह बात वहाँ के प्राचीन साधुवर्ग कहा करते थे।

इस प्रकार चालीस वर्ष की कठोर साधनाओं ने तोतापुरीजी को ज्ञान के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ कर दिया, तथापि उन्होंने अपने जीवन के कठोर नियमों और साधनाओं को बनाये रखा।

यथासमय तोतापुरीजी को उनके गुरु के बाद मठ की गद्दी पर बिठाया गया।

दक्षिणेश्वर में आगमन :

नित्यमुक्त ईश्वरकोटि के पुरुष किसी सत्य-सिद्धांत की प्रतिष्ठा कर जनकल्याण-साधन के निमित्त ही जन्म लेते हैं एवं जिस कार्य के लिए उनका आगमन हुआ है, उस कार्य के समाप्त हो जाने पर अंत में पूर्णतया ज्ञानस्वरूप में अवस्थित हो जाते हैं।

तोतापुरीजी महाराज ने जीवन्मुक्त परिव्राजक का जीवन ही अधिक पसंद किया। उनका आहार-विहार, सोना-उठना इत्यादि सभी कार्य साधारण मानवों के समान नहीं थे। नित्यमुक्त पवन की भाँति वे बाधारहित होकर देश भर में भ्रमण करते रहे। पवन की भाँति उनको कभी संसार के दोष-गुण भी स्पर्श नहीं कर पाते थे एवं एक जगह बँधकर रहना भी उनके लिए कभी संभव नहीं होता था। जहाँ भी उन्हें कोई निष्ठावान साधक दिखायी देता, उसे वे वेदांत के लिए उत्साहित करते और उसकी शिक्षा देते।

तोतापुरीजी का नियम था कि वे कभी किसी छत के नीचे विश्राम नहीं करते थे। चाहे आँधी हो या तेज धूप, वे सर्वदा रातें या तो वृक्ष के नीचे बिताते या फिर विस्तृत नील गगन के नीचे। अपने इस परिव्रज्या-काल में वे कभी भी एक स्थान पर तीन दिन से अधिक नहीं रहे।

गंगासागर और पुरी धाम के दर्शन कर लौटते

समय रास्ते में उनका दक्षिणेश्वर में आगमन हुआ। वास्तव में अपने भक्त को वेदांत-श्रवण कराने के लिए ही माँ जगदम्बा की प्रेरणा से उनका वहाँ आगमन हुआ था।

श्री रामकृष्णदेव से प्रथम मुलाकात :

अपने तीसवें वर्ष में दक्षिणेश्वर के काली मंदिर के 'पागल पुजारी' श्री रामकृष्ण धर्म-रहस्यों को जानने के लिए की गयीं अपनी कठोर आध्यात्मिक साधनाओं के बाद कुछ विश्राम ले रहे थे।

इन्हीं दिनों शीतकाल की एक सुबह संभवतः सन् १८६५, जनवरी में वे गंगाजी के घाट की उन सीढ़ियों पर बैठे हुए थे, जो दक्षिणेश्वर मंदिर की छत्री में ले जाती हैं। उसके दोनों तरफ एक पंक्ति में ६-६ शिवमंदिर बने हुए हैं। नीचे गंगाजी उत्तर से दक्षिण की ओर बह रही हैं। श्री रामकृष्ण वहाँ पर बैठ इस सुंदर दृश्य को निहार रहे थे पर उनका स्वभाव से ही अंतर्मुखी मन अधिक देर तक ऐसा नहीं कर सका और वह आनंदानुभूति में डूब गया, जिसमें कि उनका मन उन दिनों प्रायः निरंतर डूबा रहा करता था।

उन दिनों बाहर के अधिकांश लोग उन्हें 'पागल पुजारी' कहते, मंदिर के कर्मचारी उन्हें 'छोटे भट्टाचार्य' कहकर पुकारते, उनके बड़े-बूढ़े, रिश्तेदार उन्हें 'गदाधर' कहकर संबोधित करते और इने-गिने ही लोग उन्हें 'रामकृष्ण' कहते।

उन्हें बैठे अधिक देर नहीं हुई थी कि उनकी दृष्टि एक नवागन्तुक परिव्राजक संन्यासी पर पड़ी। पुजारी ने बारिकी से उस संन्यासी को देखा।

संन्यासी ऊँचे, पूरे डील-डौल के और मजबूत, सुंदर काठी के थे। वे बड़े जीवट के और दुर्दमनीय साहस से युक्त थे - मानो सिंह के आकार की एक चट्टान हो। तोतापुरीजी संभवतः अपने जीवन के पचास वर्ष देख चुके थे। अपने जटाजूट और लम्बी दाढ़ी की पृष्ठभूमि में उनका रोबीला चेहरा ऐसी प्रशांति से दमक रहा था, जो ब्रह्मज्ञान से जन्म लेती है। वे एक अनोखे परमहंस थे और उनके पास एक चिमटा, पीतल का एक लोटा तथा बैठने के लिए एक मृगचर्म को छोड़ अपना कहने को कुछ न था।

अन्यमनस्क हो एक ओर बैठे हुए श्री रामकृष्ण के तपोदीप्त, भावोज्ज्वल मुखमण्डल पर ज्यों ही तोतापुरीजी की दृष्टि पड़ी, वे आश्चर्य और आनंद से भर उठे। (क्रमशः) □

जहाँ भगवान का स्मरण-चिन्तन होता है वह स्थान पवित्र माना जाता है। वहाँ के कण-कण में उस परमात्म-तत्त्व के परमाणु फैले रहते हैं। जो आदमी क्रोधी होता है उसके आसपास सात फुट के दायरे में क्रोध के परमाणु फैले रहते हैं। हर इन्सान एक ऊर्जा-घर है। उसमें से कुछ-न-कुछ संस्कारों की सूक्ष्म तन्मात्राएँ निकलती रहती हैं। जहाँ भगवान की भक्ति करनेवाले लोग रहते हैं वह स्थान भी अपना कुछ दिव्य महत्त्व रखता है।

महाराष्ट्र में महात्मा गाँधी किसी गुफा में गये थे। गुफा में साधना करनेवाले तो चल बसे थे लेकिन प्रणव के जाप का प्रभाव मौजूद था। खाली गुफा में गाँधीजी थोड़ी ही देर बैठे तो उन्हें 'ॐ' की सूक्ष्म ध्वनि महसूस हुई। गाँधीजी लिखते हैं : 'सात्त्विक वृत्तिवाले व्यक्तियों का प्रभाव लम्बे समय तक रहता है, यह मेरा अनुभव है।'

जिस स्थान में भगवान का चिन्तन-मनन होता है वह स्थान इतना पवित्र हो जाता है तो जो आदमी भगवान का चिन्तन-मनन करता है वह कितना पवित्र हो जाता होगा ! इसीलिए भगवान के मार्ग में चलनेवाले महापुरुषों का आदर करनेवाला समाज उन्नत होता है। रुपये देकर 'लेक्चर' सुननेवाली पाश्चात्य परंपरा से केवल सूचनाएँ मिलती हैं, अमृत नहीं मिलता। गुरु और शिष्य के बीच वह संबंध होता है जो भगवान और भक्त के बीच होता है।

(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'कल्याणनिधि' से) □

सगुरे को लाभ, निगुरे को अफसोस

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

जिनको सद्गुरुओं का संग मिलता है उनके इर्द-गिर्द ये पाँच लक्षण अपने-आप चमचमाने लगते हैं :

(१) उनके ज्ञान और सद्भाव की रक्षा की सूझबूझ उनके हृदय में चमचमाने लगती है।

(२) दुःखों का क्षय होने लगता है।

(३) सुख में और अन्तर्मुखता में उनकी गति होने लगती है।

(४) उनकी समृद्धि और सद्गुणवृद्धि सहज में होने लगती है।

(५) जीवन आनंद, शांति और माधुर्यमय होने लगता है।

और जो निगुरे व मनमुख हैं उनके इर्द-गिर्द पाँच प्रकार के अफसोस मँडराते रहते हैं :

(१) इन्द्रियों को कितने भी भोग देते हैं लेकिन अफसोस मँडराते रहते हैं। 'वह हाथ से निकल गयी, उसने ऐसा कर दिया, उसने ऐसा कर दिया...' - फरियाद बनी रहेगी, अफसोस बना रहेगा।

(२) आशाओं का अँधेरा-बादल मँडराता रहेगा कि 'यह मिले, यह खाऊँ, यह भोगूँ, इसको ऐसा दिखा दूँ, वैसा कर दूँ... ।'

'मैं...मैं...मैं...मैं...' का अँधेरा-अहं मँडराता रहेगा।

(३) परलोक के ज्ञान और परलोक संबंधित प्रसाद से वह वंचित रहेगा।

(४) ईश्वर है कि नहीं, भगवान है कि नहीं और भविष्य में मेरा क्या होगा ? कुछ पता नहीं।

(५) मरने के बाद उसकी क्या गति होगी, निगुरे को पता नहीं होता।

सगुरे को पता है कि 'मरने के बाद मेरा इष्टमंत्र मेरे साथ है। मैं दूसरे जन्म में नीच योनि में तो नहीं जाऊँगा, हो सकता है कि भगवान के धाम में जाऊँ अथवा मरते समय, मरने के पहले 'ॐ, ॐ, ॐ, ॐ' जपूँगा तो अकाल पुरुष को प्राप्त करके जीवन्मुक्त हो जाऊँगा।'

'गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

'जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके **अर्थस्वरूप** मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर का त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।' (८.१३)

मरते समय जो अर्थसहित ॐकार का जप करता है उसकी सद्गति भगवान कर देते हैं। वह ऊँचे लोकों में रहे, फिर भी उसके पुण्य नष्ट नहीं होते। तप करके जो स्वर्ग में जाता है, दान या यज्ञ करके जो स्वर्ग में जाता है उसका पुण्य नष्ट होता है, उसे गिराया जाता है लेकिन साधना में लगे हुए भक्त को ईश्वरप्राप्ति नहीं हुई और शरीर छूट जाय तो उसे कुछ विश्रांति के लिए स्वर्गलोक में जाने का अवसर मिलता है। वहाँ वह चाहे हजार वर्ष रहे, चाहे दो हज़ार वर्ष रहे, चाहे दस हजार वर्ष रहे, उसकी मौज।

अर्जुन ने पूछा कि ''भगवान ! आपके रास्ते कोई चले और आपकी प्राप्ति के लिए साधन-भजन करे, संसार का ऐश-आराम, भोग छोड़

दे और सादा, संयमी, परोपकारी जीवन जीये लेकिन अंत समय जैसे बादल आये और आँधी-तूफान ने उन बादलों को तितर-बितर कर दिया, ऐसे मौत ने आकर साधक की साधना छिन्न-भिन्न कर दी तो उसे न भगवान मिले, न संसार के सुखभोग का मजा मिला।'' तो भगवान ने कहा : ''नहीं-नहीं।

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।

(गीता : ६.४०)

हे प्यारे ! आत्मोद्धार के लिए अर्थात् भगवत्प्राप्ति के लिए कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।''

जैसे आप काम करते-करते एकाएक नींद में चले गये तो जो पहले पढ़ा है, जो पहले काम किया है नींद के बाद भी वे संस्कार आपके नहीं मिटते, ऐसे मृत्यु की निद्रा के बाद साधना के संस्कार नहीं मिटेंगे और स्वर्ग के सुख को जितना भोगना चाहे भोगकर फिर श्रीमान के घर अथवा किसी योगी के घर मेरे भक्त का जन्म होता है अथवा साधना बहुत ऊँची है तो ब्रह्मलोक में जायेगा और ब्रह्माजी की जब तक अवधि है उतना समय ब्रह्मलोक में रहेगा। फिर आखिरी की कुंजी ब्रह्माजी का थोड़ा-सा उपदेश मिलेगा **'अहं ब्रह्मास्मि'** का, तो फिर वह साधक सिद्ध बनकर ब्रह्माजी के साथ ब्रह्म-कैवल्य को प्राप्त हो जायेगा।

तो यहाँ कैसे जीयें इसकी ज्यादा चिन्ता न करो, मृत्यु के बाद क्या गति होगी उसका ज्यादा चिन्तन करो। यह जीवन तो जैसा प्रारब्ध से रचा है वैसा गुजर जायेगा।

आप नहीं चाहते तो भी दुःख आ ही जाता है, बीमारियाँ आ ही जाती हैं, घाटा आ ही जाता है, महँगाई और टैक्स छाती पर आ ही जाते हैं, सिर पर मँडरा ही लेते हैं, ऐसे ही आप नहीं चाहेंगे तब भी सुखद प्रारब्ध और सुविधाएँ आ ही जायेंगी और चली जायेंगी, दुःख आयेगा और चला जायेगा। जीवन इसीमें बीत जायेगा। इसकी ज्यादा चिन्ता न करो।

तो जो निगुरे मनुष्य हैं उनके जीवन में ये पाँच अंधकार, अफसोस मँडराते रहते हैं और जो सद्गुरु से दीक्षा लेता है, उनके सिद्धांत पर चलता है वह धनभागी है, उसके इर्द-गिर्द पाँच सफलताएँ मँडराती रहती हैं। □

गुरुवाक्य का कर अनुसरण,
विश्वास श्रद्धायुक्त हो।
बतलाय है जो शास्त्र,
कर आचार संशयमुक्त हो॥
जो जो बताते शास्त्र गुरु,
उपदेश सर्व यथार्थ है।
संशय न उसमें कर कभी,
यदि चाहता परमार्थ है॥
यह ज्ञान ही केवल तुझे,
सुख मुक्ति का दातार है।
ना ज्ञान बिन सौ कल्प में भी,
छूटता संसार है॥
सब वृत्तियों को रोककर,
तू चित्त को एकाग्र कर।
कर शांत सारी वृत्तियाँ,
निज आत्म का नित ध्यान कर॥
क्या-क्या करूँ, कैसे करूँ,
यह जानना यदि इष्ट है।
तो शास्त्र संत बतायेंगे,
जो इष्ट या कि अनिष्ट है॥
श्रद्धासहित जा शरण उनकी,
त्याग निज अभिमान दे।
निर्दम्भ हो, निष्कपट हो,
श्रुति संत को सन्मान दे॥
'मैं' और 'मेरा' त्याग दे,
मत लेश भी अभिमान कर।
सबका नियंता मानकर,
विश्वेश का ही ध्यान कर॥
मत मान कर्ता आपको, कर्तार भगवत जान रे।
तो स्वर्ग द्वार जाय खुल, तेरे लिए सच मान रे॥
(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'आत्मगुंजन' से)

सर्वोपरि व परम हितकर...

(गतांक से आगे)

देवर्षि नारदजी कहते हैं : हे शुकदेव ! तुम अहित को हित, अनित्य सांसारिक विषयों को स्थायी और अनर्थकारी धनादि को अर्थसिद्ध मानते हो और सचेत नहीं होते। तुम ऐसी भूल में क्यों पड़े हो ? जैसे रेशम का कीड़ा अपने ही किये कार्य से आप ही रेशम के गड्ढे में बँधकर मर जाता है, वैसे ही मनुष्य अपने कर्मों से अपनेको बन्धन में डालता है किंतु सचेत नहीं होता।

सांसारिक भोगों का संग्रह करने और उनकी रक्षा करने में एक-दो नहीं अनेक दोष हैं। अतएव इस अर्जन-रक्षणरूप परिग्रह से परमार्थी मनुष्य को अवश्य ही हाथ खींच लेना चाहिए क्योंकि जैसे रेशम का कीड़ा अपने-आप परिग्रह से मारा जाता है, वैसे ही मनुष्य भी परिग्रह से मारा जाता है। जैसे जलाशय के गहरे कीचड़ में या दलदल में फँसकर जंगली बूढ़ा हाथी घबड़ा-घबड़ाकर वहीं मर जाता है, उससे बाहर नहीं निकल पाता, वैसे ही मनुष्य भी रागरूपी दलदल से बाहर निकल के ज्ञान-वैराग्य के शुद्ध मार्ग पर नहीं आ पाता। जैसे महाजाल में फँसी हुई और जल के बाहर खींची हुई मछलियाँ तड़फड़ा-तड़फड़ाकर मर जाती हैं, वैसे ही स्नेहरूपी बन्धन में बँधे हुए इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग आदि के दुःखों से तड़फड़ाते और बिलखते हुए मनुष्यों को तुम देखो। उनकी दशा को देखकर हे शुक ! तुम सांसारिक स्नेह एवं राग के जाल में मत फँसो।

स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी, निज शरीर और संचित किये हुए धनादि समस्त पदार्थ अपने नहीं पराये हैं क्योंकि वे सब अपने साथ नहीं जाते। अपने साथ जानेवाले तो अच्छे-बुरे कर्म हैं। स्त्री-पुत्रादि तो अपने तब कहे जा सकते थे यदि वे अपने साथ जाते किंतु जब स्त्री-पुत्रादि समस्त स्वजनों को छोड़कर एक दिन तुमको अकेले ही जाना है, तब तुम अनर्थकारी कामादि के बंधन में क्यों फँसते हो ? अभीष्ट सुख के लिए तुम अपने परमार्थ को क्यों नहीं सँभालते ? मरने पर जिस मार्ग से तुमको जाना पड़ेगा, उस मार्ग पर न तो एक भी विश्रामस्थल है और न कोई वस्तु खाने ही को मिलती है। उस मार्ग में जाने पर दिशाओं का भी बोध नहीं होता। उस मार्ग पर तो घना अन्धकार छाया रहता है। हे शुकदेव ! मरने के बाद ऐसे भयंकर मार्ग पर तुम अकेले कैसे जाओगे ? अपने इस प्रिय शरीर को छोड़ कूच करते समय तुम्हारे पीछे-पीछे स्त्री-पुत्रादि कोई भी स्वजन न जायेगा। तुम्हारे सच्चे साथी केवल तुम्हारे पाप और पुण्य तुम्हारे साथ जायेंगे।

विद्या, कर्म, धर्म, शौच और विस्तृत ज्ञान को तो लोग प्रायः धनोपार्जन के काम में लगाते हैं। इनके द्वारा कल्याण प्राप्त करना नहीं जानते। यदि कोई मनुष्य विद्यादि अपने सत्कर्मों से अपना परमार्थ-साधन करता है तो कृतार्थ होकर वह संसार के सभी दुःखजनक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

अधिक जनसमुदाय में बसने की जो रुचि है वही बाँधनेवाली रस्सी है। पुण्यात्मा लोग इस रस्सी को तोड़कर एकान्त में तप करते हैं किंतु पापीजन इसी रस्सी में दिनोंदिन दृढ़ता के साथ बँधते जाते हैं। कल्याणमार्ग के पथिक को उचित

है कि वह ऐसी नदी को अपने पुरुषार्थ से तैरकर पार हो जाय, रूप तो जिसके तट हैं, मन उसके प्रवाह का वेग है, स्पर्श द्वीप है, रस-विषयरूपी तृण उसमें बह रहे हैं, गंधरूपी पंक और शब्दरूपी जल उसमें भरे हैं। स्वर्ग के मार्ग में यह नदी पड़ती है और यह बड़ी वेगवती है। इसका कर्णधार क्षमा है। धर्म ही किनारे पर रोकनेवाली रस्सी है और त्यागरूपी मार्ग पर चलनेवाली सत्यरूपी नौका इस नदी के पार उतारती है।

धर्म-अधर्म, सत्य-मिथ्या आदि द्वन्द्वों का त्याग करके जिसने तुमको त्याग दिया है उसे तुमको भी त्याग देना चाहिए अर्थात् स्वर्गादि उत्तम सुखों की प्राप्ति की कामना से किया गया धर्म-कर्म भी बन्धन का हेतु है। अतएव उसको त्यागने के लिए कहा गया है। सत्य-मिथ्या त्यागने का अभिप्राय मौन-व्रत धारण करना है। विषयभोग आदि मनुष्यों को त्याग देते हैं अर्थात् मनुष्य जैसे-जैसे भोगों की इच्छा करता है, वैसे-ही-वैसे वे भोग उसकी इच्छानुसार उसे नहीं मिलते। अतः अपनेको त्यागनेवाले उन भोगों को मनुष्य स्वयं ही त्याग दे। संकल्प के त्याग से काम्य धर्म को छोड़ना चाहिए और तृष्णा को त्यागकर अधर्म को त्यागना चाहिए। बुद्धिपुरस्सर, भलीभाँति निश्चय कर सत्य-मिथ्या को त्याग के तुम सच्चे मुनि बन जाओ और परम निश्चय द्वारा अपनी बुद्धि को स्थिर करो। (क्रमशः) □

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद-क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।

'मैं प्रातः उस परमात्मा का चिंतन करता हूँ जो हृदय में संस्फुरित हो रहा है। जो हृदय में लहलहा रहा है उस आत्मदेव का, उन गुरुदेव का मैं आदर करता हूँ। उन्हें दिल के सिंहासन पर सजाना चाहता हूँ।

हे मेरे गुरुतत्त्व ! अब तेरा राज्य हो। मेरे राज्य से तो मैं मारा गया, मेरी मान्यता से तो मैं अभागा रह गया, लूटा गया, कंगाल होता आया। हे मेरे अन्तर्यामी ! हे परब्रह्म परमात्मा !!'

प्रतिदिन सुबह सच्चे हृदय से यह प्रार्थना किया करो, अवश्य उन्नति होगी।

भगवान शंकर ने कहा है :

गुरुलाभात्सर्वलाभो गुरुहीनस्तु बालिशः।

'गुरुदेव की संप्राप्तिरूपी लाभ से अन्य सभी लाभ मिलते हैं। जिसका कोई गुरु नहीं है वह मूर्ख है।'

जिसका कोई गुरु नहीं है उसका कोई सच्चा सहायक, हितैषी भी नहीं है। 'निगुरा' तो एक प्रकार की गाली है।

संत कबीरजी ने कहा :

निगुरे का नहीं कहीं ठिकाना,
चौरासी में आना जाना।
पड़े नरक की खान, निगुरे नहीं रहना...
निगुरा होता हिय का अंधा,
खूब करे संसार का धंधा।
क्यों करता अभिमान, निगुरे नहीं रहना...
सुन लो चतुर सुजान, निगुरे नहीं रहना...

भगवान रामजी के गुरु वसिष्ठजी थे, रामकृष्ण परमहंसजी के गुरु तोतापुरीजी महाराज थे, लीलाशाहजी बापू के गुरु केशवानंदजी और हमारे गुरु लीलाशाहजी बापू थे। जीवन का लक्ष्य, लक्ष्य की पूर्णता तथा जीवन का माधुर्य यह तो सद्गुरु की कृपा के बिना हमने निखरता हुआ देखा नहीं है।

सद्गुरु मेरा शूरमा करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का हरे भरम की कोट॥

उनके शब्दों से भ्रम की कोट मिट जाती है।

भ्रम क्या है ? हम गरीब हैं, अमीर हैं, भाई हैं, सुखी अथवा दुःखी हैं, यह भ्रम है। यह तो मन की वृत्तियों का खेल है। वास्तव में हम क्या हैं यह सद्गुरु के ज्ञान द्वारा जब हम जानते हैं तो निहाल हो जाते हैं, पापरहित हो जाते हैं।

गुरु शिष्य की घड़ाई भी करते हैं। कुम्हार अगर सँभल-सँभलकर, मिट्टी को कहीं तकलीफ न हो, इस प्रकार घड़ा बनाता है तो घड़ा बनाने में कुम्हार को बहुत समय लगेगा।

मेरे गुरुदेव को भी अगर मेरे से सँभलकर काम लेना होता तो मेरा दुर्भाग्य हो जाता। मैं झोपड़पट्टी के बीच सात साल रहा। ऐसा वातावरण कि रहना भी कठिन था।

अग्या सम न सुसाहिब सेवा।

मुझे जितना खजाना मिला उतना श्रम नहीं करना पड़ा क्योंकि मैंने गुरु की आज्ञा मान ली तत्परता से।

गुरु शरीर छोड़ देते हैं लेकिन तुम्हारे दिल का दामन नहीं छोड़ सकते हैं। तुम दुःखी होते हो तो तुम्हारे दुःख के साथ वे भी आहें भर लेते हैं, आवेश अथवा नादानी में गलत कदम उठाते हो तो उन्हें ठेस पहुँचती है और तुम अच्छा करते हो तो वे प्रसन्न होते हैं। सुबह-सुबह उन्हें प्रसन्न कर लो तो तुम्हारा काम बन जाय। उन्हें आमंत्रित क्या करना ? वे तो तुम्हारे हृदय में डेरा डालकर बैठे ही हैं। तुम जब सोते हो तब भी वे जगते हैं। वे उसी दिन की ताक में हैं कि शिष्य शिष्य न रह जाय। शिष्य मेरा स्वरूप हो जाय, मेरा अनुभव पचा ले, उन्हीं घड़ियों की ताक में वे होते हैं। तुम वे घड़ियाँ जल्दी ले आओ, वे तुमसे यही अपेक्षा रखते हैं।

सागर से कितना भी पानी निकाल लो वह खुटता नहीं है, ऐसे ही गुरु खूब बाँटते हैं, देते हैं, फिर भी ज्यों-के-त्यों रहते हैं।

ज्ञानेश्वरजी महाराज कहते हैं : ''हे गुरुकृपा ! तू मेरे हृदय में सदैव निवास करना। मेरा हृदय छोड़कर कहीं भी मत जाना।

हे देव ! गुरु की सारी सेवाएँ मुझे प्राप्त हों ऐसी तू कृपा करना। गुरु का रसोइया भी बन जाऊँ, परोसनेवाला भी बन जाऊँ, झाड़ू लगानेवाला भी बन जाऊँ। गुरु को जब जल की आवश्यकता हो तो मैं जल लानेवाला भी बन जाऊँ।

मेरा शरीर जब शांत हो जाय तो मेरे इस तन का वाष्पीभूत पानी भी गुरु के द्वार बरसे। हे प्रभु ! वह जल ऐसी जगह बरसे जिससे वह गुरु के नहाने के काम आ सके। मेरे शरीर की जो राख हो वह भी मेरे गुरु के बगीचे में खाद के काम आये।''

जिन्हें गुरु की गरिमा का एहसास हुआ उनके लिए तो...

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥

मनुष्य आते भी रोता है, जाते भी रोता है और जब रोने का वक्त नहीं होता है तब भी रोता है लेकिन सद्गुरु तो रुदन को भी बन्दगी में बदल देते हैं और हास्य को भी हरि के प्रेम में बदल देते हैं। ऐसी युक्ति सद्गुरु के सान्निध्य में मिलती है। **- पूज्य बापूजी** □

जीवन में सद्गुरु की आवश्यकता

✻ आत्मा को खोजने, मोह की फौज को समाप्त करने, कर्म के बोझ को उतारने, ज्ञान के सागर में सराबोर होने तथा मुक्ति की मौज लूटने के लिए सद्गुरु का सान्निध्य-शरणागति अनिवार्य है।

✻ कोई भी विद्या, शास्त्र या साधना सद्गुरु बिना साध्य नहीं है। अतः सद्गुरु तो चाहिए ही। जीवन एक संग्राम है, जहाँ एक-दो नहीं हजार समस्याएँ आती हैं, वहाँ सद्गुरु के सहारे बिना अध्यात्म की रक्षा कैसे हो सकती है ?

✻ जैसे भवाटवी में भ्रमण करते हुए भुलावे में पड़े हुए पथिक को जानकार पथप्रदर्शक मिल जाय, मरुभूमि के तप्त मध्याह्न में शीतल छाँव मिल जाय, अंधकारमय अमावस्या में रास्ते पर चल रहे मुसाफिर को प्रकाश की किरण मिल जाय, मझधार में डूबते हुए को नौका मिल जाय, पानी-पानी की पुकार लगा रहे प्यासे को ठंडे, मीठे जल का प्याऊ मिल जाय तो कितना आनंद हो ! ऐसा विलक्षण आनंद सद्गुरुदेव के मिलन से जिज्ञासु साधक को होता है।

✻ आज्ञापालन में अपील नहीं होती, समर्पण में सवाल नहीं होता।

✻ चकोर के जीवन में चाँदनी के सिवा कुछ नहीं होता। सती के जीवन में पति के सिवा कोई नहीं होता। वीतराग, राह दिखानेवाले, प्रेम से सीख देनेवाले गुरुवर ! आपके सिवा हमारे जीवन में और कोई नहीं हो।

✻ गुरुकृपा में सारी सिद्धियाँ समाहित हैं। बस, गुरु के हृदय को झेलने की योग्यता चाहिए। फिर देखो गुरुकृपा क्या नहीं करती ! गुरुकृपा से मात्र बुद्धि ही नहीं, बुद्धि की निर्मलता भी बढ़ती है। गुरुकृपा से स्मृति ही नहीं, स्वाध्याय-शक्ति भी बढ़ती है। गुरुकृपा से जड़ की रुचि हटती है और चैतन्य आत्मतत्त्व की रुचि जगती है। गुरुकृपा से संसार का राग घटता है और वीतरागता का अनुराग बढ़ता है। गुरुकृपा से शोक छुप जाते हैं और प्रसन्नता फैल जाती है। गुरुकृपा से ममता का महासागर सूख जाता है और समता का सागर छलक उठता है।

✻ गुरुसेवा से यह काया घिस नहीं जायेगी। इस साढ़े तीन मन की काया की साढ़े तीन सेर राख भी नहीं बनेगी। वह राख किसीके काम भी नहीं आयेगी। अतः ऐसी काया का उपयोग गुरुसेवा में कर लेना चाहिए।

✻ सत्यतत्त्व की समझ देनेवाले, यथार्थ तत्त्व की अनुभूति करानेवाले तथा निरपेक्ष सत्य की भव्यता का भान करानेवाले एकमात्र सद्गुरुदेव ही हैं। □

सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) 'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें। पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

श्वा वै भवति निन्दकः

जो दृढ़निश्चयी हैं वे जीवन के संग्राम में सफल होते हैं, जीवनदाता की यात्रा में प्रवेश पाकर पूर्ण हो जाते हैं । संयम-नियम का पालन करने से सच्चाई आती है और सच्चाई से सत्य को जानने की जिज्ञासा पैदा होती है, जिससे श्रद्धा दृढ़ होती है व बुद्धि में सत्त्व आता है जो ईश्वर में स्थिति कराता है ।

वे धनभागी हैं जो ईश्वरप्राप्ति का उद्देश्य बनाकर आजीवन डटे रहते हैं । उन जैसे कोई बड़भागी नहीं जो सद्गुरु का दैवी कार्य करने में तत्पर हो जाते हैं । उनके दैवी कार्य में जो लग जाते हैं, ऐसे लोग सत्यस्वरूप को पाने के अधिकारी बन जाते हैं । **ध्रुव ऐसे बड़भागी थे, प्रह्लाद ऐसे बड़भागी थे, मीरा ऐसी बड़भागी थीं, छत्रपति शिवाजी ऐसे बड़भागी थे जिन्होंने गुरुओं से पूरा फायदा उठाया, गुरुओं से कभी गद्दारी नहीं की ।**

'मनुस्मृति' में आता है :

परीवादात् खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः ।
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥

'गुरु को दोष लगानेवाला गधा होता है, उनकी निंदा करनेवाला निःसंदेह कुत्ता होता है, अनुचित रीति से उनके धन को भोगनेवाला कृमि होता है और उनके साथ डाह रखनेवाला कीट होता है ।' (२.२०१)

जो उनके दैवी कार्य में भागीदार होता है वह तो स्वर्ग का देव नहीं पृथ्वी का देव बनकर अपने दैवी स्वभाव का अनुभव करके जन्म-मरण के चक्कर से पार हो जाता है। वे लोग धनभागी हैं जो गुरु के दैवी कार्य में जुड़ पाते हैं ! वे भी धनभागी हैं जो वफादारी से टिक पाते हैं ! धोखेबाज, स्वार्थी, अहंकारी, घमंडी लोग गुरु के दैवी कार्य में सदा नहीं टिक पायेंगे लेकिन जिनका स्वार्थ नहीं परमार्थ है, जिनमें घमंड नहीं नम्रता है, जिनमें कपट नहीं श्रद्धा है ऐसे लोग संसार-सागर से पार होने में सफल हो जाते हैं ।

कपट गाँठ मन में नहीं सबसे सरल स्वभाव ।
नारायण वा संत की लगी किनारे नाव ॥

चार दिन की जिन्दगी है । अपने जीवन में ऐसे कर्म करने चाहिए कि चौरासी लाख जन्मों का बन्धन काटकर मुक्तात्मा हो जायें लेकिन निंदकों के चक्कर में आकर ऐसे कर्म कभी न करें कि मरने के बाद वृक्ष की योनि में भटकना पड़े, कीट, पतंग, कुत्ते, गधे आदि की योनियों में भटकना पड़े । स्वामी शिवानंदजी ने कहा है : एक बार जिस संत को, ब्रह्मवेत्ता महापुरुष को गुरु मान लिया फिर उनसे गद्दारी करने के बजाय गुरु न करते और भवबंधन में बार-बार मरते व जन्मते तो अच्छा था ।

इसमें रामकिंकरजी ने यह व्याख्या मिला दी कि मनुष्य-जन्म में संत की निन्दा करनेवाला दादुर (मेंढक) तो बनता ही है लेकिन जो घोर निन्दा करते हैं, उनको चमगादड़ बनना पड़ता है । चमगादड़ मुँह से ही खाता है और अपनी विष्ठा भी मुँह से ही निकालता है। कैसी दुर्गति होती है संत की निन्दा करनेवालों की ! रामकिंकरजी बड़े उच्चकोटि के संत थे, 'रामायण' के बड़े मर्मज्ञ थे, उन्होंने यह व्याख्या की है । संत की निन्दा करनेवाला उल्लू भी बन जाता है। मनुष्य-जन्म में उल्लूपना आया तभी तो निन्दा करता है ।

भगवान करें हम गुरुओं के दैवी कार्य को उस देव की प्रसन्नता के लिए निष्काम भाव से करें। अहंकार पोसने के लिए नहीं, अपना उल्लू सीधा करने के लिए नहीं लेकिन अपने मनरूपी उल्लू को भगवान के चरणों में और गुरु के चरणों में ईमानदारी से अर्पण करने के लिए हमको गुरु के द्वार जाना चाहिए। जो गुरुदेव और गुरुदेव के ईमानदार साधकों पर दोषारोपण करते हैं उन पर प्रकृति का कोप देर-सवेर आ धमकता है।

जड़भरत महाराज जा रहे थे। जंगली लोगों ने कोई यज्ञ किया था। मानुषी बलि देने के लिए जंगली लोगों के मुखिया ने आदेश किया : ''जाओ, किसीको ले आओ।'' जड़भरतजी को ले आये, उनको नहला दिया, जंगली फूलों का हार पहना दिया। यज्ञ की पूर्णाहुति के लिए बलि देनी थी। ज्यों म्यान में से तलवार खींची त्यों यज्ञ की अधिष्ठात्री देवी माँ काली, जिनको प्रसन्न करके पुत्र पाना था, उनकी मूर्ति से तेजःपुंज निकला कि 'ऐसे महापुरुष की बलि मेरे यज्ञ में दोगे तो मैं कहाँ रहूँगी ?' शास्त्र में आता है माँ काली प्रकट होकर बोलीं : ''यज्ञ तो तुम्हारा पूरा होना चाहिए लेकिन महापुरुष के प्रति अपराध करके यज्ञ पूरा नहीं कर सकोगे। अपराध का दण्ड तुमको मिलना चाहिए।'' यज्ञकर्ता का सिर काटकर माँ ने हवन में डाल दिया और जड़भरत का अभिवादन किया।

संत सताये तीनों जायें, तेज, बल और वंश।
एड़ा एड़ा कई गया, रावण कौरव केरो कंस ॥

मीरा को सतानेवाले विक्रम राणा की क्या बुरी हालत हुई दुनिया जानती है। संत कबीरजी पर लाँछन लगानेवाले लोग अंतःकरण से कितने मलिन होकर तप मरे, यह उस जमाने के इतिहास को जाननेवाले लोग जानते हैं। तुकाराम महाराज की यश-कीर्ति देखकर उन पर, उनके प्यारों पर लोग झूठे, मनगढ़ंत आरोप लगाते थे। तुकाराम महाराज कुछ नहीं बोलते। संत हैं, चलो भाई ! किस-किसको बोलें ? क्या-क्या सफाई दें और दिलायें ? मरने दो, जो करेगा वह भरेगा। भगवान सद्‌बुद्धि दें सबको लेकिन सद्‌बुद्धि लेनेवाले हों तब उनको मिलती है, जो सद्‌बुद्धि लेते ही नहीं उनको तो फिर समय पाकर प्रकृति ही ठीक करती है। उनका अंत समय घुट-घुटकर जाता है और कौन-सी योनियों में जाना पड़ता है तौबा ! तौबा !!

सत्‌शास्त्र सावधान करते हैं, 'गुरुवाणी' भी कहती है कि -

संत का निंदकु महा हतिआरा।
संत का निंदकु परमेसुरि मारा ॥
संत के दोखी की पुजै न आस।
संत का दोखी उठि चलै निरासा ॥
चारि पदारथ जे को मागै। साध जना की सेवा लागै।
जे को जनम मरण ते डरै। साध जना की सरनी परै।

□

प्रार्थना

है प्रार्थना गुरुदेव से, ये स्वर्ग सम संसार हो।
अति उच्चतम जीवन बने, परमार्थमय व्यवहार हो ॥
न हम रहें अपने लिए, हमको सभीका ख्याल हो।
गुरुदेव ये आशीष दें, आत्मप्रेम का विकास हो ॥
हम हों पुजारी सत्य के, गुरुदेव के आदेश के।
सच प्रेम के नितनेम के, सत्‌धर्म के सत्कर्म के ॥
रहें दूर झूठी राह से, अन्याय से अभिमान से।
सेवा करें हम गुरुजनों की, प्यार से आभार से ॥
छोटे न हों हम बुद्धि से, हों विश्वमय से ईशमय।
हों राममय और कृष्णमय, जगदेवमय, जगदीशमय ॥
सब इन्द्रियों पर काबू कर, हम वीर हों अति धीर हों।
उज्ज्वल रहे जीवन सदा, निज धर्म रत हम वीर हों ॥
अति शुद्ध हो आचार से, तन-मन हमारा सर्वदा।
अध्यात्म शक्ति से हमें, पल भर नहीं करना जुदा ॥
झेलकर गुरु की कृपा को, हम सुखी जीवन जीयें।
इसी जन्म में अमर आत्म का, दीदार करके हम रहें ॥

गुरुज्ञान को बाँटो

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

व्यक्ति की जहाँ-जहाँ और जितनी-जितनी अधिक ममता अथवा लगाव होता है, वहाँ-वहाँ और उतना-उतना उसे सुख-दुःख महसूस होता है। भगवान के रास्ते चलनेवालों के लिए ममता का त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है। जो चीज खाने में या भोगने में प्यारी लगती है उसको बाँटना चालू कर दो तो ममता मिटेगी। वाहवाही प्यारी लगती है तो बड़ों के चरणों में बैठो। धन प्यारा लगता है तो कुछ हिस्सा दान करो। बोले : 'हमको तो गुरुजी प्यारे लगते हैं।' तो तुम गुरुजी का दान करो, गुरुजी को बाँटो। तुम बोलोगे कि 'गुरुजी का दान नहीं करेंगे।' अरे! जो दान किया जाता है वह और व्यापक हो जाता है। गुरुजी के ज्ञान का, प्रसाद का दान करने से गुरुजी और व्यापक हो जायेंगे।

ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की वाणी उनके अनुभूतियुक्त अन्तःकरण की वाणी होती है, जो महापुरुषों के वात्सल्यमय हृदय के समान कल्याण करनेवाली होती है। जैसे 'गीता' भगवान श्रीकृष्ण की वाणी है, इसकी महिमा बताते हुए भगवान ने कहा है : **गीता मे हृदयं पार्थ।** 'गीता मेरा हृदय है।'

भगवान का हृदय तो सतत भक्तों के कल्याण के लिए छलकता रहता है, ऐसे ही भगवत्स्वरूप सद्गुरुओं की वाणी तथा साहित्य सतत श्रद्धालुओं के मोक्षमार्ग का पथप्रदर्शक तथा सुरक्षा-कवच बना रहता है।

तो जिनको गुरुजी प्यारे लगते हैं उनको चाहिए कि गुरुजी को, गुरुजी के ज्ञान को उनके साहित्य के माध्यम से, उनके सत्संग की कैसेटों के माध्यम से बाँटना शुरू कर दें तो वे गुरुजी के और प्यारे बन जायेंगे, और करीब पहुँच जायेंगे।

हमारे गुरुजी तो ८० वर्ष तक की उम्र में गाँव-गाँव, गली-गली जाकर सत्संग की पुस्तकें बाँटते थे। विवेकानन्दजी ने रामकृष्ण परमहंसजी के प्रसाद को देश-विदेश में बाँटा। भगवान रामजी को वसिष्ठजी ने जो सत्संग-अमृत का पान कराया था, उन अमृतवचनों से बना 'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' नामक ग्रंथ आज भी जिज्ञासु भक्तों के लिए एक अति उत्तम ग्रंथ साबित हो रहा है। मैं भी अपने गुरुदेव के प्रसाद को इतने दिनों से बाँट रहा हूँ तो क्या हमारे गुरुजी से हमारी दूरी बढ़ गयी? नहीं। गुरुजी का ज्ञान, गुरुजी का अनुभव मेरा अपना अनुभव हो गया और पहले तो गुरुजी कहीं चले जाते तो लगता था गुरुजी हमसे दूर गये हैं लेकिन जब गुरुजी का प्रसाद मिला तब मालूम हुआ कि हमारे गुरुजी हमसे कभी भी दूर नहीं हो सकते हैं।

तो गुरु के ज्ञान का प्रसाद बाँटने से, गुरु के दैवी कार्य में लगे रहने से संसार तथा संसारी वस्तुओं से ममता मिट जाती है और शिष्य के हृदय में प्रेमाभक्ति का प्रसाद उत्पन्न होकर वह जीवन्मुक्त पद पाने का अधिकारी बन जाता है। □

भोजन : एक यज्ञकर्म

भोजन का अर्थ केवल उदरभरण नहीं है। यह एक यज्ञकर्म है। श्रुति ने इसे **'अग्निहोत्रसमो विधिः'** कहा है। जिस प्रकार यज्ञ विधिवत् किया जाता है, उसी प्रकार जठराग्नि में अन्नपानरूपी समिधा से विधिवत् हवन करना चाहिए।

'योगरत्नाकर' कार कहते हैं :

सायंप्रातर्मनुष्याणांशनं श्रुतिचोदितम् ।
नान्तरा भोजनं कुर्यात् अग्निहोत्रसमो विधिः ॥

भोजन सुबह-शाम करना चाहिए। इस बीच में अन्न-सेवन नहीं करना चाहिए। अन्यथा पूर्व आहार से बना अपक्व आहार-रस पुनः लिये गये आहार के साथ मिलकर शीघ्र ही अजीर्णजन्य व्याधियाँ उत्पन्न करता है। पूर्व आहार का सम्यक् पाचन होने के बाद अर्थात् ६ से ८ घंटे बाद शाम को पुनः लघु आहार लेना चाहिए।

भारत उष्ण-कटिबंधीय देश है, अतः यहाँ सुबह भोजन से पूर्व नाश्ता व रात का भोजन स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है। इसीलिए रात में भोजन न करके सूर्यास्त होने से पहले भोजन करना स्वास्थ्यप्रद है। सूर्यास्त के बाद जितनी देर करेंगे उतना हानिकर है। शाम का भोजन शाम को करना है, रात को नहीं।

आमाशय (जठर) के तीन भाग कल्पित कर एक भाग घन आहार के लिए, एक भाग द्रवरूप आहार के लिए व एक भाग त्रिदोषों को कार्य करने के लिए रखना चाहिए।

पचने में भारी पदार्थों का सेवन आधी भूख रखकर करें व हलके पदार्थों का सेवन भी थोड़ी भूख रखकर ही करें। अति मात्रा में सेवन किया गया आहार भयंकर परिणाम लाता है।

मात्रावत् आहार के लक्षण :

आहार के द्वारा पेट पर दबाव न पड़े, पेट में भारीपन व पीड़ा न हो, बैठना, सोना, चलना, श्वास-प्रश्वास आदि में प्रयास न हो, इन्द्रियाँ तृप्त रहें, बल, वर्ण और शरीर की वृद्धि हो - ये मात्रापूर्वक आहार के लक्षण हैं।

कम मात्रा में लिया गया आहार मन में अतृप्ति, उदासीनता उत्पन्न करता है। अल्प आहार से शरीर, बल, वीर्य, ओज का क्षय होता है। इन्द्रियों व बुद्धि की कार्यक्षमता का ह्रास होता है। अल्प आहार ८० प्रकार के वातरोगों का कारण है। साथ ही मात्रा से अधिक भोजन रोगोत्पत्ति का प्रमुख कारण है।

हितकर-अहितकर आहार :

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्त्तते ।

'उसी आहार का नित्य सेवन करना चाहिए जो स्वास्थ्य को बनाये रखे।'

(चरक संहिता, सूत्रस्थान : ५.६)

श्री चरकाचार्यजी ने उपर्युक्त श्लोक में स्वास्थ्यवृत्त के व्यापक सिद्धान्त की नींव डाली है।

नित्य सेवनीय द्रव्य :

साठी के चावल, शाली धान के चावल, मूँग, गाय का दूध व घी, सेब, मट्ठा, हरी सब्जियाँ, गेहूँ, चावल, अनार, अंगूर, हरड़ व दिव्योदक अर्थात् जमीन पर गिरने से पहले इकट्ठा किया गया वर्षा का जल- ये नित्य सेवनीय पदार्थ हैं।

क्वचित् सेवनीय द्रव्य :

मलाई, मावा, छेना, दही, उड़द, सेम, कमलकन्द, मैदे से बने पदार्थ, अंकुरित धान्य,

सूखी हरी सब्जियाँ- इनका सेवन यदा-कदा ही करना चाहिए। प्रायः न करें।

सर्वथा त्याज्य द्रव्य :

ओट (घोड़जई), सरसों का साग, भेड़ का दूध, बर्रे का तेल, बड़हर का फल, आलू, गन्ने से बनी राब व वर्षा ऋतु में नदी का पानी सर्वथा त्याज्य है।

हितकर पदार्थ श्रेष्ठ गुणयुक्त होने पर भी उनका सेवन पाचनशक्ति, प्रकृति, उम्र, देश, काल आदि का विचार करके ही करना चाहिए, अन्यथा वे भी अहितकर हो जाते हैं।

*

दैवी चिकित्सा

बीजमंत्रों से स्वास्थ्य-सुरक्षा

बीजमंत्र	लाभ
कं –	मृत्यु के भय का नाश, त्वचारोग व रक्त-विकृति में।
ह्रीं –	मधुमेह, हृदय की धड़कन में।
घं –	स्वप्नदोष व प्रदररोग में।
भं –	बुखार दूर करने के लिए।
क्लीं –	पागलपन में।
सं –	बवासीर मिटाने के लिए।
वं –	भूख-प्यास रोकने के लिए।
लं –	थकान दूर करने के लिए। ☐

सद्गुरु से प्राप्त मंत्र का ठीक प्रकार से, विधि व अर्थसहित, प्रेमपूर्ण हृदय से जप किया जाय तो क्या नहीं हो सकता है ? जब टेलिफोन के इतने छोटे-से डायल का ठीक-से उपयोग करके हम विश्व के किसी भी देश के कोने में स्थित व्यक्ति के साथ संबंध जोड़ सकते हैं तो भीतर के डायल का ठीक-से उपयोग करके विश्वेश्वर के साथ संबंध जोड़ लें इसमें क्या आश्चर्य है ?

(आश्रम से प्रकाशित 'इष्टसिद्धि' पुस्तक से)

सर्वांगीण विकास की कुंजियाँ

✲ यादशक्ति बढ़ाने हेतु :

(१) प्रतिदिन १५ से २० मि.ली. तुलसी रस, एक चम्मच च्यवनप्राश व थोड़ी-सी किशमिश का घोल बना के सारस्वत्य मंत्र अथवा गुरुमंत्र जपकर पीयें। ४० दिन में चमत्कारिक फायदा होगा।

(२) भोजन के बाद तिल का एक लड्डू चबा-चबाकर खायें।

(३) १०० ग्राम सौंफ, १०० ग्राम बादाम व २०० ग्राम मिश्री तीनों को कूटकर मिला लें। सुबह ३ से ५ ग्राम यह मिश्रण चबा-चबाकर खायें, ऊपर से दूध पी लें। (दूध के साथ भी ले सकते हैं।) इससे भी यादशक्ति बढ़ेगी।

✲ पढ़ा हुआ याद रहे, इस हेतु :

(१) अध्ययन के समय पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके सीधे बैठें।

(२) सारस्वत्य मंत्र का जप करके जीभ की नोक को तालू में लगाकर पढ़ें।

(३) अध्ययन के बीच-बीच में व अंत में शांत हों और पढ़े हुए का मनन करें। भगवद्सुमिरन करके शांत हों।

✲ कद बढ़ाने हेतु :

प्रातःकाल दौड़ लगायें, पुल-अप्स व ताड़ासन करें तथा २ काली मिर्च के टुकड़े करके मक्खन में मिलाकर निगल जायें। देशी गाय का दूध कदवृद्धि में विशेष सहायक है।

✲ शरीरपुष्टि हेतु :

(१) भोजन से पहले हरड़ चूसें व भोजन के साथ भी खायें।

(२) रात्रि में एक गिलास पानी में एक नींबू निचोड़कर उसमें दो किशमिश भिगो दें। सुबह पानी छानकर पी जायें व किशमिश चबाकर खा लें।

(क्रमशः) ☐

'ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि

रजोकरी (दिल्ली), २६ अप्रैल (अवतरण-दिवस) : जिनका जन्म-मरण नहीं होता लेकिन विश्वमानव को जन्म-मरण से पार करने के लिए जिनका आविर्भाव होता है ऐसे संतों का जन्मदिवस नहीं, अवतरण-दिवस होता है । क्योंकि जन्म शरीर का होता है पर अवतारी महापुरुष वहाँ होते हैं जहाँ जन्म-मरण खेलमात्र होता है । वे दिखते तो शरीर में हैं लेकिन उनके भीतर ऐसी अनुभूति होती है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता । ऐसे महापुरुष सर्वव्यापी होते हैं ।

पूरे भारत में पूज्य बापूजी का अवतरण दिवस 'सेवा-दिवस' के रूप में मनाया गया । इस अवसर पर १७,००० बाल संस्कार केन्द्रों में विभिन्न कार्यक्रम और भोजन-प्रसाद का वितरण हुआ । १२०० समितियों ने अपने-अपने गाँवों-शहरों में, नगरों में कीर्तन-यात्राएँ निकालीं तथा झुग्गी-झोपड़ियों में गरीब-गुरबों को और अस्पतालों में मरीजों को अन्न, जल, फल, औषधि, पैसे आदि प्रदान कर कई-कई प्रकारों से इस 'संत अवतरण-दिवस' पर सेवा-सुवास महकायी । लाखों-करोड़ों भक्तों ने अपने-अपने घरों में अपने औलिया के अवतरण-दिवस पर उनकी स्मृति और साधना सँवारी; अपना घर व पड़ोस पावन किया ।

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः ।
धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता ॥

'जिसके अंदर गुरुभक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसका वंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेनेवाले धन्य हैं, समग्र धरती माता धन्य है ।'

जिनके हृदय में गुरुभक्ति है, जो गुरु-संदेश पहुँचाने का कार्य कर रहे हैं वे मानवमात्र के परम सुहृद, परम हितैषी एवं उज्ज्वल भविष्य के आशादीप हैं, आसाराम बापू के लाड़ले हैं ।

पूज्य बापूजी का अवतरण-दिवस वैदिक संस्कृति से ६९ दीये जलाकर मंगलाचरण करते हुए मनाया गया । विडियो कौनफरैंस के माध्यम से देश-विदेश के आश्रमों में इस औलिया के **'जन्म कर्म च मे दिव्यं...'** के दिव्य सत्संग का सजीव प्रसारण किया गया जिसका लाभ लाखों-करोड़ों भक्तों ने लिया । सभीके मुख से बापूजी की दीर्घायु की मंगल-कामना से यही उद्गार निकलते देखे गये :

''पृथ्वी सुखदायी हो, जल सुखदायी हो, आकाश सुखदायी हो, बधाई हो बधाई हो !...''

चंडीगढ़ आश्रम, ४ मई : पूज्य बापूजी ने महापुरुषों व भगवान से कैसे लाभ उठायें इससे संबंधित ५ बातें बतायीं ।

पूज्यश्री ने कहा : ''हरियाणा, पंजाब व हिमाचलवासी भगवान की केवल मूर्ति में ही श्रद्धा नहीं रखते अपितु ब्रह्मज्ञान का सत्संग देनेवाले संतों के प्रति भी श्रद्धा-भक्ति रखते हैं ।''

यहाँ के भक्तों ने अपने सद्गुरु का दर्शन-सत्संग पाकर श्रद्धा व साधना की पुष्टि की ।

पंचकुला (हरियाणा), ९ व १० मई : 'पूज्य बापूजी के सत्संग में मिलती है सुखी, स्वस्थ व सम्मानित जीवन जीने की कुंजी ।' उक्त अनुभव उन पंचकुलावासियों के हृदय से प्रस्फुटित हुए, जिन्होंने पूज्य बापूजी की ज्ञान, भक्ति व भगवन्नाम से भरपूर सत्संग-वर्षा में स्नान किया ।

आश्चर्य को भी आश्चर्य हो जाय - दीक्षा के

दिन आँधी, तूफान, वर्षा चल रही है, दीक्षार्थी तो बैठे ही हैं लेकिन सत्संगी भी कोई हिलता नहीं। आने-जानेवाली परिस्थितियों से अप्रभावित रहने का सत्संग सत्संगियों ने आत्मसात् कर लिया। जीवन्मुक्त पुरुष के सान्निध्य में फरियादमुक्त, भयमुक्त, और **'पूरे हैं वे मर्द जो हर हाल में खुश हैं'** इसका परिचय उनके तितिक्षा और समता भरे व्यवहार से प्राप्त हो रहा था।

वर्षों की साधना से जो दुर्लभ समता और तितिक्षा प्राप्त होती है, उन दीक्षा-प्रेमियों के जीवन में, सत्संग-प्रेमियों के जीवन में उन ऊँचाइयों के दीदार हुए। भगवान शिवजी ने क्या सुन्दर कहा है :

आकल्पजन्मकोटिनां यज्ञव्रततपः क्रियाः।
ताः सर्वाः सफला देवि गुरुसंतोषमात्रतः॥

'हे देवी ! कल्प पर्यन्त के, करोड़ों जन्मों के यज्ञ, व्रत, तप और शास्त्रोक्त क्रियाएँ - ये सब गुरुदेव के संतोषमात्र से सफल हो जाते हैं।'

पूज्य बापूजी उनकी समता और तितिक्षा पर खूब प्रसन्न हुए और बरसायी नूरानी निगाह।

लुधियाना (पंजाब), ११ व १२ मई : साहनेवाल स्थित आश्रम में भक्तों की भीड़ से पूरा मैदान खचाखच भर गया। अपने सद्गुरु में रब को देखने की जो श्रद्धाशक्ति है, वह तो आदि गुरु नानकजी के काल से सिक्खों में भरपूर है। पूज्य बापूजी के आगमन पर श्रद्धालु भक्तों ने पंजाबी भजन **'रब मेरा सद्गुरु बन के आया, मैंनु वेख लैण दे'** से पूरा माहौल गुरुभक्ति के रस से सराबोर कर दिया।

पूज्य बापूजी ने भक्तों को अपने जीवन में से आसुरी प्रकृति को त्याग मानवी व दैवी गुण और आत्मदेव का आनंद सुविकसित करने को कहा।

भक्तों की पुकार पर चले आते हैं पूज्य बापूजी : लुधियाना से देहरादून कार द्वारा यात्रा करते समय पूज्यश्री ने भक्तों की पुकार पर अम्बाला, हेमामाजरा व सहारनपुर के आश्रमों में थोड़ी-थोड़ी देर सत्संग-अमृत की वर्षा बरसायी। धन्य हुए अम्बाला, हेमामाजरा व सहारनपुरवासी। सबके चेहरों पर पूज्य बापूजी के दीदार से छायी रौनक साफ दिखायी पड़ रही थी।

देहरादून, १३ व १४ मई : यहाँ प्रथम सत्र विद्यार्थियों के नाम रहा। पूज्यश्री ने विद्यार्थियों को यादशक्ति बढ़ाने के गुर बताये। गढ़वाली भाषा व गढ़वाली वेशभूषा में **'मन लगगी मेरो गुरु की चरण मां...'** इस भजन पर विद्यार्थियों द्वारा किया गया नृत्य अभूतपूर्व था। बड़े-बूढ़े ही नहीं, छोटे-छोटे बच्चे भी भावरस में सराबोर हो गये व नेत्रों से श्रद्धेय बापूजी के लिए प्रेम व भक्ति के आँसू बरसने लगे। सभीका प्रेम के साम्राज्य में सहजता से प्रवेश हो गया। बच्चों का भक्तिभाव देख पूज्यश्री ने देहरादून के बच्चों की सराहना की।

देवभूमि उत्तराखंड की राजधानी देहरादून में हुई इस सर्वदुःखनिवारक सत्संग-अमृतवर्षा का लाभ लेने विशाल श्रद्धालु-वृंद पहुँचे। इस अलौकिक अवसर का लाभ उठाने उत्तराखंड के मुख्यमंत्री श्री भुवनचन्द्र खंडूड़ी भी पहुँचे।

पूज्य बापूजी का सत्संग सुनकर श्री मुख्यमंत्री ने कहा : **''सत्संग की प्राप्ति भाग्यशाली लोगों को ही होती है। सत्संग की महिमा ईश्वर से भी बढ़कर है। प्रदेशवासियों का सौभाग्य है कि परम पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचनों का लाभ उन्हें मिला। प्रदेशवासियों को बापूजी का सत्संग बार-बार मिलता रहे।**

पूज्य बापूजी ने देश के युवाओं को सन्मार्ग की प्रेरणा दी है, जो आज के परिवेश में प्रासंगिक है।''

मुख्यमंत्री श्री खंडूड़ी ने युवाओं के भविष्य को उज्ज्वल बनानेवाली पुस्तक 'युवाधन सुरक्षा' के नूतन संस्करण 'दिव्य प्रेरणा-प्रकाश' का विमोचन भी किया। □

उत्तराखंडवासियों को पूज्य बापूजी का सत्संग बार-बार मिलता रहे, ऐसी शुभ प्रार्थना पूज्य बापूजी के श्रीचरणों में करते हुए वहाँ के सत्संग-प्रेमी मुख्यमंत्री श्री भुवनचन्द्र खंडूड़ी ।

1 Jun 2008
RNP. NO. GAMC 1132/2006-08
WPP LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91
DL(C)-01/1130/2006-08
WPP LIC NO.U(C)-232/2006-08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. MH/MR/14/07-08
'D' NO. MR/TECH/47-4/2008

इस थोड़े-से जीवन में, आओ आज आनन्द मना लें। भवबंध छुड़ानेवाली, पूज्य गुरुवर की महिमा को गा लें।

पूज्य बापूजी के ६८वें 'अवतरण-दिवस' पर देश भर में निकाली गयीं हरिनाम संकीर्तन यात्राओं तथा भजन-संध्या के दृश्य। कीर्तन की तुमुल ध्वनि से वातावरण को पावन करते तथा गुरुवर के संदेशों को जन-जन तक पहुँचाते पूज्य बापूजी के लाड़ले।

बैंगलोर (कर्नाटक) | चाकूर, जि. लातूर (महा.) | इलाहाबाद (उ.प्र.)

बिलासपुर (छ.ग.) | तेल्हारा, जि. अकोला (महा.) | पूना (महा.)

भीलवाड़ा (राज.) | गोण्डा (उ.प्र.) | रायबरेली (उ.प्र.)

विशाखापट्टनम् (आं.प्र.) | नासिक (महा.) | उदगीर, जि. लातूर (महा.)

जगाधरी, जि. यमुनानगर (हरियाणा) | आजमगढ़ (उ.प्र.) | बीड (महा.)

Posting at Rishi Prasad PSO between 25th of preceding month to 10th of current month. Back issue at PSO-AHD * Posting at ND. PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.